इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-37 जुलाई अंक-6

महर्षि दयानन्द सरस्वती

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

आर्य संकल्प

सम्पादक

रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता

स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

गुरु-शिष्य एक दूसरे का सम्पोषक

हमारी वैदिक संस्कृति में विद्वान और उपदेशक का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। मार्ग दर्शक और ज्ञान प्रदाता के रूप में सम्पूर्ण संसार में पूजे जाते हैं। इनका स्थान राजा से भी ऊँचा होता है। शास्त्र भी कहता है विद्वत्वंच नृपत्वं च नैव तुल्यम कदा चन। स्वदेश पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।। ऋग्वेद भी उपदेश दे रहा है-

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे या वाचा यजति पज्रियो वाम। प्रैषयुर्न विद्वान ऋ-1.120.5 अर्थात हे अध्यापक और उपदेशक महानुभाव। आप दोनो आप्त के समान सब के कल्याण के लिये सदा प्रवृत रहें। इसी प्रकार विदुषी स्त्री भी। सब मनुष्य विद्या, धर्म, सुशीलता आदि से युक्त होते हुए निरंतर सुशोभित होवे। अध्यापक और उपदेशक ऐसी शिक्षा करें, जिससे हम लोग सबके मित्र बनकर पक्षपात से उत्पन्न पापों को त्यागकर अभीष्ट को सिद्ध करने वाले बनें। शिक्षक लोग शिष्यों को धार्मिक नीति सिखा कर उन्हें पाप रहित और कल्याणमय आचरण वाला बनावे। अध्यापक शिष्यों के अंगों को उपदेश से पुष्ट कर के भोजन व्यायामादि बतलाकर सब विधायें प्राप्त कराके, अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करवाके और ऐश्वर्य प्राप्त करवा के उन्हें सुखी रखें।

सब विद्वानों और विदुषियों को योग्य है कि सब बालक और वालिकाओं के लिये दिन-रात विद्या का दान करें, और राजाओं तथा धनवानों के पदार्थों से अपनी जीविका चलावें। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि ब्रह्मचारी दयानन्द जब गुरू विरजानन्द के चरणों में जाते हैं तब गुरूवर कहते है, दयानन्द! तुम आवास और भोजन का प्रबंध कर लो तभी हमारे यहाँ शिक्षा प्राप्त कर सकोगे तब वेद भक्त दयानन्द को मथुरा के एक सेठ ने भोजन दूध आदि की व्यवस्था कर दी थी । तब जाकर गुरूवर से शिक्षा प्राप्त कर व्याकरणदि के अद्वितीय पण्डित बन गये और वेदोद्धारक के रूप में जग विख्यात हुए, प्राचीन काल में भी विद्यार्थी भोजन के लिये भीक्षाटन किया करते थे।

माता-पिता का भी कर्तव्य है कि जब बालक और बालिका आठ वर्ष का हो जाये तो विद्या व्रह्मचर्य पालन और शिक्षा दिलाने के लिये विद्वानों और

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	भारतीय संस्कृति	2
4.	मानव जीवन में योग	9
5.	महर्षि दयानन्द	14
6.	आर्यो उठों..	19
7.	गाय की श्रेष्ठता	21
8.	आत्मविश्वास	23
9.	वेद प्रार्थना	31

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

जुलाई

गुणकार्मानुसार विवाह

यूयं हि दैवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ
भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुशषः ससन्त
द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्।।

(ऋग्वेद 4/51/5)

पदार्थ- हे मनुष्यों ! जिस प्रकार (**उषसः**) उषा [प्रभातवेला] (**चरथाय**) भ्रमण करने के लिए (**ससन्तम्**) सोनेवाले (**जीवम्**) जीवधारियों को (**प्रबोधयन्ती**): जगाती हुई (**द्विपात्**) दो पैरोंवाले मनुष्यों को, (**चतुष्पदः**) चार पैरोंवाले गो, आदि पशुओं को तथा (**सद्यः**) शीघ्र (**भुवनानि**) लोक-लोकतान्तरों को प्राप्त होती है, उस प्रकार (**हि**) ही (**यूयम्**) आप सब (**ऋतयुग्मिः**) सत्य से युक्त (**अश्वैः**) बड़े, बलवान् और पुरुषार्थी मनुष्यों के साथ (**देवीः**) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाववाली नारियों को (**परिप्राथ**) अच्छे प्रकार प्राप्त होइये।।

भावार्थ- जो पुरुष उत्तम गुण, कम्र और स्वभाववाली माता, बहिन पुत्री और पत्नी को प्राप्त होते हैं, वे उसी प्रकार सुखी होते हैं, जिस प्रकार प्रभातवेला में सब मनुष्य और पशु-पक्षी सुखी होते है।

काव्यरूपान्तरण-

सोते मानव पशुओं को भी,
जैसे उषा जगाती है।
कर्म हेतु प्रेरित करती है,
सब लोकों में जाती है ।। 1 ।।
वैसे ही ऋत और बली नर
शुभ गुण की नारी पावें।
ज्ञान और निज शुभ कर्मों से,
सुखी रहें, सुख फैलावें ।। 2 ।।

- डॉ० वेद प्रकाश, मेरठ

भारतीय संस्कृति के विनाश का पहला और बड़ा कारण- हमारी अंधश्रद्धा

आज के वैज्ञानिक युग में, आधुनिकता के जमाने में हमें उन्नत देशों की भांति नए-नए अविष्कार कर हर प्रकार के साधनों से परिपूर्ण होने के अवसर मिले हैं। परन्तु ऐसा क्या कारण है जिससे हम प्राचीन काल के स्वर्णिम भारत के समान उन्नत न होकर केवल प्रगतिशील अर्थात् उन्नति के पथ पर अग्रसर का नामकरण लिए हुए है जबकि भारत का प्राचीन समय में जब आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध था तब पहले पुरातन काल में चक्रवर्ती राज्य कहलाता था ऐसा क्या हो गया, हमसे क्या खो गया कि हमारा प्यारा भारतवर्ष आज पिछड़े देशों में गिना जाने लगा है। इस सबका वास्तविक कारण था वेद एवं वेदज्ञान का लुप्त प्रायः हो जाना। प्राचीन समय में आर्यावर्त की उन्नति का सबसे बड़ा कारण हमारे लोगों का वेदानुसार आचरण था। लेकिन पोपलीला के कारण जब पुराणों का प्रकाश हुआ तब सबकुछ विकृत हो गया। लोगों के आचरण धीरे-2 क्षीण होते गए और ईश्वरोपासना के स्थान पर मूर्ति-पूजा, श्राद्ध, मृत्यु-भोज, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि चार धाम की यात्रा, देवी जागरण, भूत-प्रेत व झाड़-फूंक, गंगा स्नान, कावड़, बलि प्रथा, सती प्रथा, राधा कृष्ण का प्रेम प्रसंग (रासलीला) फलित ज्योतिष आदि-आदि (इतने विषय है कि गिनाना कठिन होगा) का प्रचार वेदों के नाम पर होने लगा। पुराणों ने हमारे इतिहास को, हमारी सामाजिक व्यवस्था को विकृत कर दिया हैं वेदों से जहाँ हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें सैदव सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने को उद्यत रहना चाहिए वहीं पुराण इसके विपरीत है पौराणिक पाखण्डियों के अनुसार जो भी उनमें लिखा है जैसा लिखा है वैसा मान लेना चाहिए विचार-विरोध न करना चाहिए। वेद का नाम लेकर ऋषियों का नाम लेकर, श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं महात्मा शिव आदि महापुरूषों का नाम लेकर जो पाखण्ड इन पंडों ने फैलाया है उसका तो क्या कहें सारे के सारे विनाश की जड़ ही यही है। आदर्शवादी मर्यादा पुरूषोत्तम राम पूजनीय हैं। उनके सत्कार्यों के अनुरूप ही उन्हें भगवान की उपाधि मिली लेकिन आज उनकी मूर्ति बनाकर उनके आचरण को, उनके चरित्र को आदर्श (अनुकरणीय) ना मानकर, उनके चित्र की पूजा आरम्भ कर दी। श्रीराम ने वेदादि शास्त्रों को पढ़ा है परन्तु उनके भक्तों ने नहीं! क्योंकि यदि स्वयं पढ़ा होता व क्षत्रियों को

पढ़ाया होता वैसा ही आचरण करते तो ढोंग और पाखण्ड का जो बोल-बाला चारो ओर आज दीख पड़ता है वह कदापि नहीं होता? वरन् जिस प्रकार राम राज्य था उसी प्रकार हमारा देश आज भी उन्नति करता और विश्वगुरू की पद्वी पर ही रहता। हम पाश्चत्य मात्र भौतिकता का अंधानुकरण न कर अपने देश की सभ्यता व संस्कृति की गौरव गरिमा को और ऊँचा उठाते। क्या जिस प्रकार इन पाखंडियों ने, पेटार्थी पोपों ने श्री कृष्ण के चरित्र को उछाला है उसी प्रकार उनके सुपुत्र के चरित्र को काई उछाले तो आप चुप रहेंगे? कहते हैं गृहस्थ में रहते हुए श्री कृष्ण जैसा ब्रह्मचारी संसार में अभी तक दूसरा नहीं हुआ, उन्होंने विवाह को व्यभिचार का अड्डा न बनाकर रूक्मिणी के साथ तपस्या की थी, 12 वर्ष तक दोनों ने वेदादि का अध्ययन और कड़ी साधना के पश्चात् एक बार पुत्र प्राप्ति की शुभेच्छा से सहवास किया था तत्पश्चात् आजीवन ब्रह्मचारी रहें दोनो। क्या आज है किसी पंडे में इतना दम? ये तो केवल ब्रह्मचारी और योगी को व्याभिचारी व भोगी बना सकते हैं मात्र अपनी विलासिता के लिए। मैं पाठकों से प्रश्न करता हूँ, उन माताओं, बहनों व भाईयों से प्रश्न करता हूँ कि आजकल के पंडितों द्वारा मंदिरों में जिस किस्म के कृष्ण का बखान किया जाता है उस किस्म के लड़के से क्या वे अपनी बेटी का विवाह कर सकते हैं? मैं तो ऐसा कदापि नहीं कर सकता तो सोचिए जरा विचार करिए आप क्या कर रहे हैं? अपने बुद्धि के पट्ट खोलिए और आज ही अपने घर में से बांसुरी वाले और राधा-कृष्ण के साथ वाले चित्रों और मूर्तियों को तोड़-फोड़कर बाहर फेंक दें जैसा कि महर्षि दयानंद के समय में हुआ था और महाभारत में बताए गए असली सुदर्शन चक्रधारी, राष्ट्रवादी और योगीराज श्री कृष्ण के उस चित्र को लगाएं जिसमें स्वयं अर्जुन का सारथी बनकर राष्ट्रविरोधी और पापी शासकों को परास्त किया था।

महाभारत के पश्चात् वेद विद्या की क्षीणता के कारण, गुरूकुल आश्रम भी कम होते गए। आश्रम व वर्ण व्यवस्था विकृत हो गई। वर्ण व्यवस्था प्राचीन काल में कर्म पर आधारित थी अब जन्म पर आधारित हो गई वेदों को ना पढ़ने वाले भी स्वयं को चतुर्वेदी, द्विवेदी आदि-आदि ब्राह्मण कहलाने लगे और वेदों का पठन-पाठन छूट जाने से लोग वेद ज्ञान से शून्य होते चले गए और अब तो आलम ये है कि न संस्कारों का ज्ञान रहा, न संस्कृत भाषा का। प्राचीन समय में तो हमारी सामान्य बोलचाल की भाषा ही संस्कृत हुआ करती थी। संस्कृत का ज्ञान ना होने से उनके मनमाने अर्थो को मानना पड़ा। अज्ञानतावश हम अंधश्रद्धा,

तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि के जाल में फंस कर दुखी रहने लगे। हमारी आर्थिक स्थिति जर्जर होती गयी और ये पाखण्डी ''कमाएगी दुनिया खाएंगे हम'' की सोच रखते हुए लोगों की मानसिक कमजोरी (अभिशाप और वरदान के चक्कर में फंसे हुए) का लाभ उठाकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार कर आज मीडिया तक पहुँच गए। और समस्त देश को ही नहीं विदेशों में भी रहने वाले हमारे भाई-बहनों को राम कृष्ण द्वारा अपनाई गई जीवन शैली से विमुख कर रहे हैं। ये अपने को श्री कृष्ण का, श्री राम का भक्त कहने लगे। क्या इन पाखण्डियों को गुरू शब्द का वास्तविक अर्थ पता है? 'गुरू' का वास्तविक अर्थ होता है सद्ज्ञान की ओर प्रेरित करने वाला अर्थात् सत्य से हमें परिचित कराने वाला लेकिन इनके किस्से कहानी तो भगवान राम और कृष्ण के चरित्र का जो ये झूठा दर्शन कराते हैं वहीं समाप्त हो जाते हैं। मेरा यह मानना है यदि आपको अपनी बुद्धि की कसौटी पर खरी लगे तो धारण कर लेना। ये पाखण्डी पोप और पंडे व गुरू कहते हैं कि श्री कृष्ण और राम एवं महात्मा शिव, हनुमान, विष्णु, ब्रह्मा, महेश आदि ये ईश्वर के अवतार हैं, भगवान हैं। भगवान तो मैं भी मान लेता हूँ लेकिन सृष्टि रचयिता ईश्वर नहीं। क्योंकि इन्होंने अपने जीवन काल में अनेक अच्छे कार्य निःस्वार्थ भाव से किए और प्राचीन काल में अच्छे कार्यों को करने वाले व्यक्तियों को भगवान की संज्ञा दी जाती थी लेकिन इन्हें केवल इन्हें ही ईश्वर का अवतार कहे तो ऐसा कहना गलत होगा क्योंकि अवतार कहते है 'अवतरण' को जो हम सभी का संसार में हुआ है और भूमि, गगन, वायु, अग्नि, नीर इन पांचो तत्वों से हमारा शरीर बना है इन भगवानों का भी इन्हीं तत्वों से बना है और ईश्वर ने हम सभी को किसी ना किसी उद्देश्य से ही संसार में भेजा हैं। अच्छा मुझे एक बात बताओ कि क्या ईश्वर कण-कण में नहीं समाया है? समाया है ना, हाँ समाया है तो मूर्ति में भी तो है, हाँ है मैं भी मानता हूँ लेकिन जब परमात्मा या ईश्वर कण-कण में समाया है सारी सृष्टि में उसका वास है तो फिर हम केवल मूर्ति पूजा क्यों करें मन्दिर में ही क्यों जाए, चढ़ावा चढ़ाए हमें तो अपने घर में पड़ी हुई प्रत्येक वस्तु की पूजा अर्चना करनी चाहिए यहाँ तक कि चप्पल जूते आदि की भी उसमें भी तो ईश्वर है। टायलट इत्यादि की सीट, ब्रश, झाड़ू आदि की उनमें भी तो ईश्वर है क्योंकि कण-कण में है तो उनमें भी तो है फिर मन्दिर ही क्यों, वहां भी चढ़ावा चढ़ा सकते है आखिर तो मन्दिर में भी हम अपनी मानसिक गन्दगी का पश्चाताप मूर्तियों रूपी भगवान के समक्ष करते है यहां तो

शारीरिक गन्दगी भी साफ हो रही हैं क्यों नहीं कर सकते बताओ जरा, क्या फर्क पड़ता है भला एक पंथ दो काज हो जाएगे। शरीर की तो गन्दगी साफ हो ही रहीं है, मन की भी कर लेंगे। अच्छा कहते है ना कि बच्चे तो भगवान का रूप होते है तो क्या हम बच्चों को भगवान मानकर उनकी पूजा करते है? क्या उनको भगवान मानकर उन्हें शिक्षा-दीक्षा देना बंद कर देते है? नहीं। बस यहीं तो समझना है भगवान तो कण-कण में बसा है चाहे जड़ हो या चेतन लेकिन उसकी प्राप्ति मन्दिर में नहीं होगी। वह हमें किसी पत्थर जूते चप्पल या वस्तु में नहीं मिलेगा वहीं मिलेगा जहां हम भी हैं। और हम कहां रहते है, हमने कभी जानने का प्रयास ही नहीं किया। हम का मतलब यहां हमारे शरीर से नहीं वरन् हमारी आत्मा से है क्योंकि हमारा शरीर भी तो जड़ है और इसी जड़वत् शरीर रूपी वृक्ष पर हृदय रूपी स्थान में आत्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी एक वृक्ष के फलों को भोग रहा, दूसरा देख रहा है, तो कहां मिलेगा वहां जहां हम है। हमारा मन तो सदा बहिर्मुखी होता है क्योंकि अंर्तसाधना तो कभी की नहीं, केवल बाहरी दिखावे में रहें, मन्दिरों में स्थापित मूर्ति को ही भगवान या ईश्वर समझकर साधना करते रहे। याद रखना हमारी (आत्मा) और परमात्मा के बीच केवल ज्ञान की दूरी है, स्थान की नहीं। हम पाखण्डियों के बहकावे में आकर नाना (काशी, हरिद्वार, बद्रीनाथ, काबा आदि) स्थानों में जाकर भगवान को ढूंढते है सो गलत है। लेकिन यदि देश अथवा स्थान की दूरी होती तो हम परमात्मा को सर्वत्र व्यापक नहीं कह सकते थे क्योंकि परमात्मा तो बद्रीनाथ में भी है यहां हमारे अन्दर भी तो स्थान या देश की तो दूरी नहीं है और न ही काल की दूरी है क्योंकि मंदिर में ताले खुलवाते है? नहीं, हम आँखे बंद करके अपने मन-मन में प्रार्थना करते है सुबह तक ताले खुलने का इंतजार नहीं करते क्योंकि असलियत अर्थात् सच्चाई हमें भी पता है कि भगवान हमारे भीतर ही है हम उससे कभी भी किसी भी पल प्रार्थना, उपासना कर सकते है। अब केवल और केवल ज्ञान की दूरी हमारे बीच रूकावट है ज्ञान की दूरी तभी दूर हो सकती है जब हम अपने अंदर छिपे अज्ञान को मिटा देंगे। अज्ञान कहते है असत्य विद्या को और जो सत्य विद्या है अर्थात् जो वस्तु जैसी हो उसको वैसा ही मानना और कहना सत्य है, वहीं सद्ज्ञान है। वही सत्यज्ञान हमें धारण करने में सैदव उद्यत रहना चाहिए और असत्य विद्या को छोड़ने में भी सदैव तत्पर रहना चाहिए। यही महर्षि स्वामी दयानन्द का मन्तव्य है कि आप जो पौराणिकता के पाखण्ड के जाल में फंसे है उसे त्यागकर सच्चे ईश्वर को जाने और फिर माने,

अंधानुकरण न करें। महर्षि दयानन्द सरस्वती उच्च ब्राह्मण कुल में जन्में थे उन्हें क्या पड़ी थी कि किसी को सत्य बताए, वे भी अन्य पाखण्डियों पण्डो की भाँति खूब पेट भरते और विवाह कर गृहस्थी बनते, पाँच-सात बच्चे पैदा कर उनके लिए धन वैभव जोड़ लेते लेकिन नहीं उन्होंने अपने जीवन में सत्य की खोज की, सच्चे ईश्वर को जाना और हमें सत्य सनातन वेद ज्ञान की ओर लौटने के लिए प्रेरित किया जो सत्य को ग्रहण कर लेता है फिर उसके समक्ष कितनी भी बड़ी विपत्तियाँ आ जाए बड़े से बड़े दुःख को सहजता से झेल जाता है उफ तक नहीं करता। तो आईए इस अपने अंदर पनप रहें अंधविश्वास की जड़ों को उखाड़ने का प्रयास करे जब तक आप विचार नहीं करोगे तब तक आपका अंधविश्वास नहीं टूटेगा जड़े गहरी होती जाएंगी, आप जैसे अनेक पौराणिक लोग जो पण्डितों और गुरूओं के बहकावे में है वें कहते है मूर्ति पूजा के प्रति हमारी श्रद्धा है एक कहावत भी है 'मानो तो देव नहीं तो पत्थर' लेकिन जो जैसा है उसको वैसा ही मानना बुद्धिमानों का काम है तो पत्थर ही मानना चाहिए देव नहीं। क्या श्रद्धा से अथवा मानने से भगवान मिलते है, क्या? जिसमें श्रद्धा कर लो वही भगवान मिलते है, क्या? जिसमें श्रद्धा कर लो वहीं भगवान है? ऐसा विचार करना हमारी भूल है तो फिर विचार कीजिए निम्न बातों पर:-

क्या तजाब का जल मान लेन से तजाब जल बन जायेगा? क्या गोबर को खीर माने तो खीर बन जाएगा? क्या कलम में बंदूक की श्रद्धा करे तो कलम बंदूक बन जाएगी? क्या बजरी को चीनी समझने की श्रद्धा करे तो बजरी चीनी बन जाएगी? क्या मदिरा अर्थात् शराब में दूध की श्रद्धा करे तो शराब दूध बन जाएगा? शेर को गीदड़ समझकर उसके सामने जाओ, क्या शेर गीदड़ बन जाएगा और छोड़ देगा? यदि हम बल्ब को अज्ञानता वश या अपनी आस्था या श्रद्धा मानकर सूर्य समझने लगे तो क्या वह सूरज बन जाएगा? ऐसा कभी नही हो सकता। क्या कागज के फूलों से कभी सुगंध आती है? क्या बिल्ली नकली चूहे पर झपटती है? यदि मांस खाना ही श्रद्धा है तो अपने बच्चे का मांस खाऐंगे आप? यदि बलि चढ़ाना ही आपकी श्रद्धा है तो क्या अपने किसी प्रियजन की बली चढ़ाना पसंद करेंगे? सृष्टि कभी मानव के हाथों से बन नहीं सकती, यदि बन सकती तो किसी को भी अंधी, लंगड़ी या मृत संतान नहीं होती। शराबी या मांसाहारी अपनी भावना अर्थात् श्रद्धा व आस्था के कारण ही तो मांस खाता या शराब पीता है, तो क्या उसकी यह भावना एवं आस्था उचित एवं अनुकरणीय है? उज्जैन के काल

भैरव मन्दिर में सर्वदा चढ़ावे के रूप में शराब की बोतले अर्पित की जाती है। कहीं-कहीं मांस भी अर्पित किया जाता है क्या ये ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा है? अपनी आस्था व श्रद्धा के कारण अनेक बाँझ स्त्रियाँ पाखण्डियों पर अंधविश्वास कर दूसरों के बच्चों की बलि कर देती है क्या ये उनकी आस्था, उनका अंधविश्वास सही है?

क्या भारत आज जिस दौर से गुजर रहा है उसका एक बहुत बड़ा कारण हमारी अन्धश्रद्धा, हमारी गलत आस्था व भावना नहीं है? सोचिए जरा। केवल और केवल एक अकेली मूर्ति पूजा में अपनी श्रद्धा का परिणाम देखिए। वेदों में स्पष्ट है "न तस्य प्रतिमा अस्ति" अर्थात् इस ईश्वर की कोई प्रतिमा या मूर्ति ही नहीं है। पहले यज्ञशालाएँ होती थी। लगभग 2600 वर्ष पहले मूर्ति पूजा का आरम्भ हुआ, मन्दिर बने, उनमें यज्ञवेदियों के सोना पर सोना, चाँदी, कांस्य व अन्य धातुओं की मूर्तियों की स्थापना की गई। मन्दिरों में चढ़ावे के स्वरूप हीरे, मोती, रत्न, माणिक्य, पन्ना, पुखराज आदि आने लगे। कालान्तर में जब विदेशियों को पता चला तो उन्होंने आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए। लोगों का रक्त बहाया। स्त्रियों की अस्मिता लूटी गई। मोहम्मद बिन कासिम, सुबुक्तगीन, गजनबी, तैमूरलंग, गौरी, बाबर आदि ने यहाँ लगभग 600, 700 वर्षो तक खून की नदिया बहाई, लाखों मन्दिरों, महलों को धवस्त किया। गुरूकुलों, आश्रमों व विद्यालयों को नष्ट किया। यह सब उन मन्दिरों में अथाह धन सम्पति के कारण हुआ। आज भी इसका उदाहरण पद्मनाथ का मन्दिर जो दक्षिण भारत में विद्यमान है, 1 लाख करोड़ रूपये के लगभग उसमें हीरे मोती स्वर्ण आदि है। ऐसे ही जब सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा गया तो सन् 1001 में उसमें सैतालिस सौ करोड़ रूपये के हीरे, जवाहरात व आभूषण मिले थे। आज उनका मूल्य क्या होगा। ये सब मूर्तिपूजा में श्रद्धा के कारण ही तो है।

इसी अविद्या के कारण सिन्ध के राजा की हार हुई। वह अत्यन्त साहसी एवं बलवान योद्धा था उसने कभी हार नहीं मानी बस मोहम्मद बिन कासिम और मन्दिर के पुजारी की मिलिभागत से अन्धविश्वास का आश्रय लेकर ही हार हुई। मन्दिर के पुजारी ने दाहिर की सेना में भ्रान्ति फैला रखी थी कि जिस दिन मंदिर का ध्वज झुक जाएगा उस दिन सेना हार जाएगी। अन्यथा सेना को हराना टेढ़ी खीर है। कासिम को जब यह बात पता चली तो वह ब्राह्मण का वेश धारण कर सिंध के उस मन्दिर पर आ गया और पुजारी से युद्ध के समय झंडा झुका देने और जीतने पर आधा राज्य पारितोषिक स्वरूप

देने को कहा। इस छल के कारण सिंध के राजा दाहिर की पराज्य हुई थी। झंडा झुका देने से सेना का मनोबल अंध विश्वास के कारण टूट गया। दाहिर अकेला पड़ गया यह सब अवैदिक ज्ञान व अन्धविश्वास के कारण ही तो हुआ।

आखिर अपने हृदय से पूछे क्या मूर्ति पूजा परमात्मा को पाने के लिए की जाती है? सत्य तो यह है कि परमात्मा को साकार वस्तुओं के माध्यम से नही पाया जा सकता। मूर्तियों से तो भगवान का बनाया हुआ मनुष्य, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि का साकार रूप अच्छा जिनको देखकर मन स्थिर किया जा सकता है पर ऐसा नहीं होता। हर रोज हमारा मन इन साकारों को देखकर भी चंचल होता है, कलुषित होता है तो स्पष्ट है मन को, बुद्धि को, हृदय को साकार की आवश्यकता नहीं जरा सोचिए जब मन्दिर के भगवान को साकार रूप दे ही दिया तो पूजा अर्चना के समय आंखे बन्द करके क्यों बैठते है? टकटकी लगाकर निरन्तर उसे देखते क्यों नहीं?

प्रिय पाठको! मूर्ति पूजन करने वाला मन्दिर में स्थित मूर्ति से मन्दिर में थोड़ा भय खाएगा अन्यत्र स्थान पर नहीं क्योंकि उसके लिए तो भगवान मन्दिर में ही रहता है परिणाम स्वरूप एकान्त पाकर खूब कुकर्म करेगा क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा तो मन्दिर में है मुझे देख नहीं रहा। मूर्ति पूजक तो नास्तिक है, आस्तिक तो परमात्मा को कण-कण में मानने वाला है। अतः वह पाप कर्मों से स्वयं को बचा लेता है।

अतः पाठको से निवेदन है मेरी बात को अन्यथा ना लेकर अपने भीतर के ईश्वर को जानो, तथा बाहरी दिखावा बन्द करो, मेरा मूर्ति पूजा के खण्डन का प्रयोजन किसी भी प्रकार से किसी के मन को दुखाना नहीं अपितु सत्य ज्ञान की ओर प्रेरित करना है यदि उपरोक्त लेख के माध्यम से आपके अंदर सच्चे ईश्वर के प्रति थोड़ी सी भी सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होकर आप इस अन्धकूप से निकलने का प्रयास करेंगे तो मैं अपनी इस लेखनी को सार्थक समझूंगा।

डॉ0 गंगा शरण आर्य, नई दिल्ली

●

पेज 18 का शेष .....

4. एक बार महर्षि से एक सज्जन ने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर भी कोई एक शास्त्र रचकर संसार में अपना नाम क्यों नहीं छोड़ते? तो महर्षि ने उत्तर दिया कि आगे जो शास्त्र रचे हैं, उनमें कौन सी कमी है? जिसको पूरा करने के लिए अपना नया शास्त्र बनाऊं। और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में समय व्यर्थ गंवाऊँ।

मानव जीवन में योग के मूल्य एवं विभिन्न आयाम

-वेदाचार्य डॉ० रघुवीर वेदालंकार, नई दिल्ली

उक्त विषय पर विचार करने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि योग क्या है? इसे यदि संक्षेप में कहा जाए तो यही कहेंगे कि योग समग्र जीवन दर्शन है। यह एक ऐसी सुसंमित एवं परिमार्जित जीवन पद्धति है जिसे अपना कर व्यक्ति न केवल स्वयं ही दुःख मुक्त होता है, अपितु अन्य प्राणियों को भी सुखी कर देता है। पतञ्जलि के 'योगश्चितवृत्तिनिरोधः' की व्याख्या में व्यास जी लिखते हैं- योगः समाधिः। यह समाधि क्या है? निश्चित रूप में योग दर्शन में यह योग का अन्तिम अंग है। हम यहाँ इस समाधि की चर्चा नहीं करेंगे।

मानव जीवन के प्रसंग में समाधि की यह व्याख्या उपयुक्त होगी-समाधिः समाधानम्। किसका समाधान? समस्याओं का। योग वस्तुतः मानव जीवन, समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं का समाधान है। चाहे व्यक्ति हो या समाज, आज सभी कोई समस्याओं से ग्रस्त है। समस्याएँ भी विभिन्न प्रकार की हैं। आज मानव एवं समाज दोनों का ही चित्त प्रसन्न नहीं है, शान्त नहीं है। क्षिप्त, विक्षिप्त एवं मूढ़ अवस्था में वह इधर-उधर भटक रहा है। इसीलिए बेचैन एवं तनावग्रस्त है। काम, क्रोध, लोभ, भय, मत्सर, राग-द्वेष आदि विकार व्यक्ति एवं समाज दोनों के जीवन में व्याप्त हैं। योगमार्ग इनसे मुक्ति दिलाकर चित्त को प्रसन्नता प्रदान करता है। योग द्वारा प्रदत्त यह प्रसन्नता स्थायी है तथा चित्त को शान्ति एवं स्वास्थ्य प्रदान करने वाली है। वह चित्त चाहे व्यक्ति का हो या समाज का, प्रक्रिया दोनों की समान है।

जीवन में योग के लाभ

1. चित्त प्रसादनम्- पतंजलि मुनि कहते हैं- मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुख-दुःखपुण्यापुण्यविषयाणांभावनातश्चित्तप्रसादनम्। यो. सू. 1.33 राग-द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर से ग्रस्त व्यक्ति के मन में मैत्री, करुणा आदि का उदय हो ही नहीं सकता क्योंकि इसका चित्त दोषों से दूषित है, विकृत है। इसका शोधन योग की प्रक्रिया से ही सम्भव है। सामाजिक तथा राजकीय दण्ड भी व्यक्ति को राग-द्वेष रहित करके उसके मन में मैत्री, करुणा आदि का उदय नहीं कर सके।

योग केवल विरक्त संन्यासियों का धर्म नहीं, अपितु यह संसार में रहने वाले प्रत्येक सांसारिक मानव की जीवन साधना है। वह व्यक्ति चाहे किसी भी वर्ण या आश्रम का क्यों

न हो, इसे अपनाना उसके लिए अनिवार्य है, क्योंकि श्रेयस् का यही मार्ग है। इसके विपरीत

दुःख का, विषाद का मार्ग है। युद्धक्षेत्र में पराक्रमी अर्जुन इसी राग भावना से तो संयुक्त हो गया था। जिसके प्रति भी यह आसक्ति=प्रेम=प्रादुर्भूत हो जायेगा, व्यक्ति उसके सामने हथियार डाल देगा, चाहे उसके सामने उसका शत्रु तथा विरोधी भी क्यों न हो। इसीलिए भगवान् कृष्ण अर्जुन को बार-बार कहते हैं, जबकि क्षत्रिय राग-द्वेष से ऊपर उठकर केवल कर्त्तव्य मात्र परायण हो। यदि व्यक्ति इस धर्म का पालन करने लगे तो इससे वह स्वयं भी सुखी होगा तथा समाज को भी सुखी करेगा।

2) बुरी वृत्तियों का शमन– प्रत्येक व्यक्ति के मन में अच्छी तथा बुरी वृत्तियों का द्वन्द्व चलता रहता है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहा जाता है। क्रोध, असत्य हिंसा आदि की वृत्तियां व्यक्ति के मन में उदित होती ही रहती हैं। उसके दो कारण है। प्रथम यह कि इन्द्रियों का स्वभाव ही यह है कि वे विषयों की ओर भागती हैं। विषयों के कारण ही मन में हिंसा, काम, क्रोध, लोभ आदि की वृत्तियाँ उदित होती रहती हैं। दूसरा कारण यह कि कोई भी प्राणी जब हमारे साथ दुर्व्यवहार या हमारा अहित करता है तो उस समय उसके प्रति हमारे मन में प्रतिहिंसा, क्रोध, अहंकार आदि के भाव जग जाते हैं। अतः हम उनके अधीन होकर ही कार्य

करने लगते हैं। पतंजलि मुनि इन वितकों से छूटने का उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि वितकों का उदय होने पर इनके प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। पतंजलि प्रतिपक्ष भावना का स्वरूप भी समझा देते है कि ये वितर्क अनन्त दुःख तथा अज्ञान के उत्पादक हैं। प्रतिपक्ष की भावना यही है कि यदि मैं हिंसा आदि का आश्रय लूंगा तो मुझे दुःखों की अग्नि में तपना पड़ेगा। इस प्रकार परिणाम को सोच कर व्यक्ति हिंसा आदि से उपरत हो सकता है।

3) जीवन का नियन्त्रण– आजकल कुछ लोग विविध प्रकार के आसनों को ही योग/योगा मानने लगे हैं तथा कुछ लोग सीधे ही ध्यान में प्रवेश का यत्न करते हैं। ये दोनों ही योग नहीं है। पतंजलि का योग यम-नियमों से प्रारम्भ होता है तथा ये दोनों योग के अपरिहार्य अंग हैं। इनके द्वारा न केवल व्यक्ति का ही, अपितु पूरे समाज का जीवन नियन्त्रित होता है तथा वहां सुख-शान्ति आनन्द का संचार होता है।

आज का व्यक्ति/समाज भोगों में आकण्ठ डूबा है। इनके लिए उसने नाना एषणाएं मन में पाल रखी हैं। इनके लिए ही वह नाना दुष्कर्म करता है। चोरी, छीना-छपटी, असत्य भाषण, हिंसा, खाद्य पदार्थों में मिलावट,

बलात्कार, रिश्वत ये सभी व्यक्ति की तृष्णा के शमनार्थ ही हैं। आज एक धनी व्यक्ति को भी अपने धन पर सन्तोष नहीं है। तृष्णा के वशीभूत वह इसे अधिकाधिक करना चाहता है तथा इसके लिए अनुचित मार्गों को भी अपनाता है। परिणाम स्वरूप समाज में अपराध बढ़ते रहते हैं। योग का सन्तोष नामक नियम तृष्णा पर ही प्रहार करता है। पतंजलि इसका फल अनुत्तम सुख की प्राप्ति बतलाते हैं। यदि व्यक्ति तथा समाज इस सन्तोष नामक नियम का पालन करने लगे तो समाज के आधे अपराध अपने आप कम हो जायेंगे। यहाँ पर व्यास जी एक श्लोक भी उद्धृत करते है कि संसार के समस्त दिव्य सुख भी तृष्णा क्षय रूपी सुख के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है। इसी प्रकार यमों के अन्तर्गत अपरिग्रह है। इसका पालन करके व्यक्ति अनाप-शनाप धन तथा विलास का सामान एकत्रित करने से बच जायेगा। व्यास जी अपरिग्रह को स्पष्ट करते हुए कहते है कि विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय, संग तथा हिंसा आदि दोषों के कारण विषयों को स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है।

इन दोषों को न देखने के कारण ही हम विषयों के अर्जन, रक्षण तथा सेवन में लगे रहते हैं। यदि समाज ने अपरिग्रह का पाठ पढ़ा होता तो वह आज सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार तथा नाना घोटालों में न डूबा होता। घोटालों के समान ही स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार तथा उनकी हत्या यह आज का राष्ट्रव्यापी रोग है। सरकारी कानून इतने शिथिल है कि वे व्यक्ति के इन दुष्कर्मों के निवारण में असमर्थ हैं। जनसंख्यावृद्धि भी आज की मुख्य समस्या है जिसके नियन्त्रण के लिए सरकार प्रचार माध्यमों में पर्याप्त धन व्यय कर रही है। इन दोनों समस्याओं पर ब्रह्मचर्य अकेला ही नियन्त्रण कर लेगा। किन्तु सरकार तो ब्रह्मचर्य के स्थान पर गर्भ निरोध के विविध उपयों का ही प्रचार कर रही है। इससे जनता में विषय प्रवृत्ति ही बढ़ रही है, लाभ कुछ नहीं। वाचस्पति मिश्र यह भी कहते है कि उपस्थेद्रिय के समान अन्य इन्द्रियों को विषयों से रोकना भी ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत ही है।

इसी प्रकार अन्य यम-नियम भी हैं जो हमारे व्यक्तिगत जीवन तथा समाज को पूर्ण नियन्त्रित एवं शुद्ध कर देंगे। नियमों में शौच नामक प्रथम नियम ही पर्याप्त महत्वपूर्ण है। व्यास जी शौच के बाह्य तथा अन्तरिक दो भेद करते हुए कहते हैं कि मिट्टी-जल आदि से बाहर की शुद्धि-अभक्ष्य पदार्थों का न खाना बाह्य शौच हैं तथा चित्त के मलों का क्षालन आभ्यन्तर शौच है। यदि समाज केवल इस शौच नामक नियम को ही अपना ले तो वह उपद्रवों

तथा भ्रष्टाचार से रहित होकर पूर्णतः शुद्ध हो जायेगा। हमारा चित्तः नाना वासनाओं से मलिन

है। इसीलिए हम व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर नाना प्रकार के अपराध एवं भ्रष्टाचार करते हैं। पतंजलि कहते है कि चित्त की इस अशुद्धि के नाश का सशक्त साधन योग ही है। इससे चित्त की अशुद्धि दूर होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है।

क्लेश मुक्ति- संसार में अधिकांश व्यक्ति क्लेशों या दुःखों से पीड़ित हैं। कहीं इनका विभाजन आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक रूप में किया गया है तो कही अन्य रूप में। पतंजलि अविद्या-अस्मिता आदि के रूप में इनका विभाजन करते है। योग दर्शन का लक्ष्य इन क्लेशों की निवृत्ति है। क्लेशों के रहते हुए व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता । क्लेशों की निवृत्ति केवल योग मार्ग से ही सम्भव है। क्लेशों की निवृत्ति होने पर व्यक्ति इसी जन्म में मुक्त हो जाता है। हमारे जीवन में दुःख कब उत्पन्न होता है? तभी, जबकि हमे अप्रिय पदार्थ की प्राप्ति तथा प्रिय पदार्थ का वियोग होता है। अभीष्ट एवं प्रिय पदार्थों को प्राप्त करके हम प्रसन्न एवं सुखी होते हैं तथा उनके वियोग में कष्ट का अनुभव करते हैं। पतंजलि तो कहते हैं कि ये सभी पदार्थ परिणाम, ताप, संस्कार तथा उनके बचने का उपाय करता है। यह उपाय योग

द्वारा ही सम्भव है। पतंजलि तथा उनके भाष्यकार व्यास देव जी स्पष्ट घोषणा कर रहे हैं

कि विषयों के सेवन से सुख नहीं मिल सकता। भोगों को भोगते हुए उनके प्रति राग बढ़ता ही जाता है। यही राग दुःख का कारण है। योग साधना से इसी राग को नष्ट किया जाता है।

न केवल राग को ही, अपितु योगमार्ग के द्वारा अविद्या आदि पांचों क्लेशों को समूल नष्ट किया जाता है। वस्तुतः ये सभी क्लेश अविद्या आदि के ही भेद हैं। योगमार्ग अविद्यानाश एवं ज्ञानदीप्ति का एक मात्र साधन है। पतंजलि अविद्या का यही स्वरूप बतलाते है कि अनित्य, अशुद्धि, दुःख तथा अनात्म में इनके विपरीत बुद्धि रखना ही अविद्या है। हम सभी इस अविद्या से ग्रस्त है। इसीलिए दुःखी है। योग दर्शन अविद्या के मूल पर ही प्रहार करता है।

मन की एकाग्रता- यद्यपि योग का लक्ष्य उसका अन्तिम अंग समाधि है, तथापि समाधि से पूर्ववर्त्ती धारणा एवं ध्यान ये दोनों अंग समाधि का सोपान तो हैं ही, इसके अतिरिक्त व्यक्ति के मन तथा जीवन में भी आमूल चूल अपरिवर्तन कर देने वाले हैं। धारणा एवं ध्यान के द्वारा मन पर नियन्त्रण होता जाता है तथा स्वतः ही बुरी वृतियाँ का नाश होने लगता है। जिस प्रकार गन्दे जल में क्लोरिन या अन्य

शोधक दवाई डालने से जल स्वतः ही शुद्ध होने लगता है, उसी प्रकार चित को ध्यान परायण कर देने पर स्वतः ही वहाँ से कुसंस्कार एवं दूषित वृत्तियाँ तिरोहित होने लगती हैं। तिहाड़ जेल (दिल्ली) में कैदियों पर किये गये विपश्यना के प्रयोगों ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि बुरी वृत्तियों के विनाश में ध्यान अति उपयोगी है। यदि प्रत्येक मानव प्रतिदिन नियमित ध्यान करने लगे तो इससे उसका जीवन स्वतः ही नियमित तथा परिष्कृत हो जायेगा।

इस प्रकार ध्यान का व्यवहारिक जीवन में भी बहुत महत्व है। अनुभव में यह आया है कि ध्यान से श्वास सूक्ष्म होने लगता है तथा इसके साथ ही कुत्सित वृतियाँ भी समाप्त होने लगती हैं। ध्यानी व्यक्ति कभी भी कुपथगामी नहीं हो सकता। वह भ्रष्टाचार, अनाचार तथा परहित नहीं कर सकता। सामाजिक क्षेत्रों में योग की यह अद्‌भुत उपलब्धि है। जिस व्यक्ति को दण्ड या अन्य किसी भी साधन से सुपथ पर कहीं लाया जा सकता है। उसे योगमार्ग से नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके साथ व्यक्ति के तनाव चिन्ता आदि मानसिक विकार भी सर्वथा दूर हो जाते है। योग इन्हें नष्ट करने का सशक्त साधन है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सब कुछ करते हुए, सब कुछ खाते-पीते हुए योग के नाम पर कुछ आसन या केवल धारणा/ध्यान कर लेने मात्र का नाम योग नहीं है, अपितु योग एक समग्र जीवन पद्धति है। यह एक ऐसा मार्ग है जो हमें उत्तम जीवन जीने की कला सिखाता है, रोग, शोक, राग-द्वेष आदि से मुक्त होकर सर्वदा प्रसन्न एवं शान्त रहने की कला सिखलाता है। योग के आठों भागों का सेवन ही योग है। योगी व्यक्ति का जीवन सुसंयमित, परिमार्जित तथा आनन्द पूर्ण होता है। योग जीवन की आवश्यकता है, अपरिहार्यता है तथा सम्पूर्णता है।

•

आर्य समाज का आधार वेद है। आर्य समाज, श्रेष्ठ व्यक्तियों का संगठन है, जो मानव-मात्र का कल्याण करे। मनुष्य समाज से अविद्या, अंध विश्वास और पाखण्ड को मिटाया जाये, इससे हमारे विकास में रूकावट आती है। आर्य समाज वैचारिक क्रांति तथा परोपकारी संस्था है। आर्य समाज का उद्देश्य संसार का उपकार करना है, सबकी उन्नति के लिये प्रयत्न करना है। उसके लिये ''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि'' करनी चाहिये।

शत्रुघ्न और महर्षि दयानन्द

लेखक- कुन्दन लाल आर्य, चूनियाँ वाला

काम, क्रोध, लोभ मोह और अहंकार ये पांच विषय कहलाते हैं जिन को जीतना महाकठिन समझा जाता है। जिस के मुतालिक एक श्लोक है जिस का अर्थ है कि विष और विषय में बहुत अन्दर है। विष तो खाने से ही मनुष्य को मारता है परन्तु विषय तो ध्यान मात्र से ही मनुष्य का सर्वनाश कर देते है। इसलिए एक कवि ने भी कहा है-

दुखदायी हैं सब शत्रु हैं,
ये विषय हैं जितने दुनिया के ।
वही पार हुआ भवसागर से,
जो जाल में इनके फंसा न रहा ॥

सो महर्षि दयानन्द जी ने इन पांचों शत्रुओं को मार कर इन पर विजय पाई थी इसलिए सच्चे अर्थों में शत्रुघ्न थे।

1. काम

महर्षि दयानन्द जी आजन्म ब्रह्मचारी रहे इसलिए काम को मारना तो स्वतः सिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त जब महाराज मेरठ में निवास करते थे तो एक भक्त ने एक दिन सवाल कर ही दिया कि महाराज आप तो हाड़ मांस का शरीर रखते हैं क्या आप को कभी काम ने नहीं सताया । तो महाराज ने हंस कर जवाब दिया प्यारे मेरा कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया और न ही मेरे पास इतना वक्त ही फालतू है जो मैं इसके मुतल्लिक सोच सकूं । अपने जीवन में उन्होंने कभी किसी स्त्री को आंख भर कर भी न देखा था ।

2. क्रोध

क्रोध तो महाराज को अपने बड़े से बड़े अपमान पर भी कभी न आता था । क्रोध करना तो एक तरफ रहा अपने जहर देने वाले और कातिलाना हमले करने वालों को भी माफ कर दिया करते और गालियां देने वालों को तो मिठाइयां भी खिलाते थे ।

1. फर्रूखाबाद में ज्वालाप्रसाद नामक एक शराबी और मांसाहारी ब्राह्मण इन दिनों पोस्ट मास्टर था । एक दिन वह एक वाममार्गी ब्राह्मण को पालकी में बिठा कर ले गया और स्वामी जी के सामने कुर्सी डाल कर बैठ गया और महाराज ने उसे कुछ भी न कहा ।

2. फर्रूखाबाद में ही एक दुष्ट स्वामी जी के पास आया और स्वामी जी से पूछा की गंगा मुक्ति देती है या नहीं । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि नहीं इस पर उस ने स्वामी जी की तरफ जूता फेका और भागने लगा परन्तु एक

साधु ने उसे पकड़ लिया। फिर भी स्वामी जी ने उसे छुड़ा दिया कि इसने अज्ञानवश ऐसा किया है। निर्बल पर दया करने में बल की प्रशंसा है।

3. जो लोग गंगा के यात्रियों के दान से जीविका करते हैं वे गंगा-पुत्र कहलाते हैं। एक गंगा- पुत्र स्वामी जी के स्थान पर ही रहता था, उसने यह नियम बना लिया था कि हर रोज नियत समय पर महाराज को गालियां सुनाया करे। उसे ऐसा करते कई दिन हो गये परन्तु स्वामी जी ने इसकी गालियों की ओर ध्यान न दिया।

कानपुर निवास के समय श्रद्धालु जनों में से अनेक भक्तजन गुरू जी महाराज के लिए मिठाई, फल आदि लाया करते थे, वह स्वामी जी आने वालों में बांट दिया करते थे, एक दिन ऐसा हुआ कि कुछ मिठाई फल आदि बच रहे, महाराज यह सोच रहे थे कि यह किस को देवें कि इतने में वही गंगापुत्र सामने से जाता हुआ दिखाई दिया। महाराज ने प्रेम भरे शब्दों से उसे बुलाया और उसे वह सब पदार्थ दे दिये और कह दिया कि प्रतिदिन हमारे पास आ जाया करो और खाद्य वस्तुएं ले जाता रहा। एक दिन इसकी आत्मा ने इस को फटकारा कि ऐसे दयालु महात्मा के प्रति गालियां देकर मैंने बहुत पाप किया। एक दिन वह श्री चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि महाराज अगर मेरी दुष्टता का पार नहीं तो आपकी क्षमता की भी कोई सीमा नहीं है। आप मेरा अपराध क्षमा करें। महाराज ने कहा कि तुम्हारी गालियों को हमने अपनी स्मुति में स्थान भी नहीं दिया। तुम्हें इसके कारण दु:खी होने की आवश्यकता नहीं।

4. अलीगढ़ निवास के वक्त एक दिन एक भंगी चरसी साधु स्वामी जी के पास आया और असभ्यता पूर्ण कहने लगा, दयानन्द कौन है और कहां है। उस वक्त महाराज के पास एक सौ भद्र पुरूष बैठे थे, लोगों ने संकेत किया कि वे बैठे हैं। स्वामी जी ने इससे पूछा कि तुम ने गले में क्या डाल रखा है ? उसने कहा रूद्राक्ष, स्वामी जी बोले-रूद्र की आंख निकाल लाये हो, इस पर वह क्रोध में आकर महाराज को गालियां देने लग पड़ा परन्तु महाराज ने उसकी कुछ परवाह न की जब वह बक बक करता ही रहा तो स्वामी जी उठकर शौच को चले गये।

5. फर्रूखाबाद निवास के समय एक दिन महाराज प्रात: काल भ्रमण करने जा रहे थे कि मार्ग में इन्हें एक हट्टा कट्टा उजड्ड मनुष्य मिला, उसने महाराज को सुबह सवेरे अनेक दुर्वचन कहे, और कहने लगा कि तू ईसाईयों का नौकर है, हिन्दुओं को ईसाई बनाने आया है। महाराज उसकी गालियों सुन कर मुस्कराते रहे और आगे निकल गये।

6. मुरादाबाद में एक दिन व्याख्यान हो रहा था, कि एक ब्राह्मण ने व्याख्यान में ही उठकर महाराज को गालियां देनी शूरू कर दीं, कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, हम इस का मुंह भी देखना नहीं चाहते। परन्तु महाराज ने इसकी ओर ध्यान न दे कर अपना व्याख्यान जारी रखा।

7. एक दिन मुरादाबाद का टीका सुपरिण्टेण्ट जो ब्राह्मण था, महाराज का व्याख्यान सुनने आया। और मूर्तिपूजा का खण्डन सुन कर वह इतना आवेश में आया कि स्वामी जी को गालियाँ देने लग गया। और यह कह कर कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुंह नहीं देखना चाहिए चला गया। महाराज ने इसकी गालियों पर लेश मात्र भी ध्यान न दिया।

8. गुजरात निवास के समय एक दिन एक मनुष्य ने महाराज को ईंट से मारी, पर वह उनको लगी नहीं, पूलिसमैन ने उसको पकड़ लिया। उसने ईंट फैंकने से इनकार किया। महाराज ने हंस कर टाल दिया और उसको क्षमा-प्रदान कर दिया।

9. मुन्शी हर गोबिन्द ने मथुरा निवास के समय एक दिन मुट्ठी में धूली भर स्वामी जी पर दाल दी, स्वामी जी ने इस पर भी उस कुछ नहीं कहा।

10. कानपुर में जहां स्वामी जी के व्याख्यान होते थे, इससे थोड़ी दुर एक और शामियाना खड़ा कर के गोस्वामी नर हरगिरि, स्वामी जी महाराज को गालियां निकाला करते और कहते थे कि अंग्रजों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए इसको भेजा है और एक दिन एक ईंट भी उस तरफ से आ कर स्वामी जी के पास गिरी, परन्तु स्वामी जी महाराज मुस्कराते रहे और उसे क्षमा करते रहे।

3. लोभ

धन के लोभ को महाराज ने जितना मर्दन किया था उसका वर्णन भीष्मपितामह के प्रकरण में आप पढ़ेंगे ही परन्तु यहाँ एक बहुत ही बड़े लोभ की कथा आप को सुनानी है जिसको महाराज ने विजय कर लिया था। काशी शास्त्रार्थ से पहले जब पण्डितों ने देखा कि अब हमारा कोई बचाव नहीं है और शास्त्रार्थ में हम मूर्तिपूजा वेदानुकूल सिद्ध नहीं कर सकेंगे तो उन्होंने मिलकर खुफिया तौर पर कुछ पण्डित महाराज के पास भेजे कि अगर आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ देवें तो हम आप को निष्कलंक अवतार बना देंगे, और हाथी पर आपका जलूस निकाल कर हम सब आपकी जय जयकार। अहो ! कितना बड़ा लोभ है। विपक्षी ईश्वर का अवतार मानने को तैयार हैं परन्तु महर्षि जी ने इतने बड़े लोभ की भी तिनके

के बराबर परवाह नहीं की। और अपने सत्य पथ पर चल कर मूर्तिपूजा का भरपूर खण्डन करते रहे। किसी ने ठीक कहा है-

दुनिया तजनी सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजनी एह ॥

सब से बड़ा लोभ या मान जो किसी को दिया जा सकता है वह महर्षि को दिया गया, परन्तु उसे स्वीकार न करके महाराज ने लोभ पर पूर्ण विजयी होने का प्रमाण दे दिया।

4. मोह- भला स्वामी दयानन्द जैसा मोह का विजेता भी संसार कभी पैदा कर सकेगा। अपना जन्म नाम न बताया था, जन्म धाम ने बताया, माता पिता का नाम न बताया और जो कुछ किया उससे मोह न लगाया, अपने नाम का कुछ न बनाया, अपने काम का मोह न किया अपने शरीर का मोह न किया और जब कभी किसी ने मोह ममता की बात कही तो वे उसका तिरस्कार करते रहे।

1.- राजपूताना में रायपुर के ठाकुर साहब के आग्रह करने पर महाराज उनके यहां पधारे थे और उपदेश शुरू कर दिये । ठाकुर साहब ने एक यज्ञ कराने का निश्चय किया था, परन्तु वह न हो सका। इतने में ठाकुर साहब की ठकुरानी स्वर्गवास हो गई। तब कोठारी चाँदमल और बाबू रूपसिंह ने स्वामी जी से प्रस्ताव किया कि आप ठाकुर साहब से शोक प्रकट करने किला में तशरीफ ले चलें तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने सारे संसार से सम्बन्ध त्याग दिया है, किसी का मरना और जीना मेरे लिए एक जैसा है, मैं किसी का शोक व हर्ष नहीं करता। मेरे सम्बन्ध तो केवल उपदेश व धर्म से है शेष किसी वस्तु से नहीं है। इस पर व दोनों चुपहो गए।

2. जब गंगा के किनारे महाराज एक लंगोटी में नंगे वदन विचरते थे, तो एक जगह के लोग बड़े श्रद्धालु हो गये। और महाराज की बड़ी सेवा करने लगे, जब महाराज को वहाँ रहते तकरीबन एक महीना हो गया तो एक दिन महाराज ने कहा कि अब हम आगे जायेंगे, इस पर श्रद्धालु भक्तों ने कहा कि महाराज हम को बता देना जब आपने जाना होगा, तब स्वामी जी कहने लगे कि हमने घर से निकलते समय अपने माता-पिता को तो बताया ही नहीं तो आपको कैसे बता देंगे। चुनांचे उसी सुबह को एक कोपीन जो स्वामी जी को इन लोगों ने बड़े आग्रह से दी थी और नस्य की डब्बी छोड़ कर बरसते मेंह में आगे चले गये। जब सुबह को भक्त आए तो स्थान खाली पाया।

3. इसी तरह कानपुर में मुंशी गंगासहाय जी ने कहा कि महाराज जिस दिन आप ने जाना हो मुझे बता देना, महाराज ने कहा-ऐसा नहीं हो सकता। अगर ऐसा ही करना होता तो घर से ही

क्यों निकलता, यह कार्य मोह का है। हम नहीं बतलायेंगे, जब इच्छा होगी चल देंगे।

5. **अहंकार**- आप में से कई भाइयों ने पहलवानों की कुश्तियाँ देखी होंगी। इसमें यह प्रकार होता है कि छोटे-छोटे पहलवानों की कुश्तियाँ पहले कराई जाती हैं, और जो सब से बड़ा जोड़ पहलवानों का होता है वह सब से आखीर में लड़ाया जाता है, ठीक इसी तरह काम, क्रोध लोभ, मोह, अहंकार इन पांच पहलवानों में भी अहंकार सब से बड़ा पहलवान है। जो पहले एक, दो, तीन या चारों पहलवानों को भी जीत लेता है, वह पाँचवें से तो बड़ी मुश्किल से ही बच सकता है क्योंकि यह सब से बड़ा है- किसी ने कहा भी है-

दुनिया तजनी सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी एह ॥

यानि अहंकार को जीतना सब से मुश्किल काम है परन्तु महर्षि दयानन्द ने अहंकार को भी चकनाचूर कर दिया था। कभी किसी ने पूछा कि आप का क्या धर्म है तो यही जवाब दिया कि मेरा कोई नया मत नहीं है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त जो ऋषियों का मन्तव्य है सो मेरा भी वही है।

1. दानापुर में एक दिन श्रद्धालुओं ने कहा कि महाराज आप तो ऋषि हैं, आप जैसा विद्वान् तो कभी सुना ही नहीं गया तो महाराज हँस कर फरमाने लगे, कि ऋषि-मुनियों के जमाने में होता तो शायद मेरी गिनती विद्वानों में भी न हो सकती।

2. एक दिन एक जगह व्याख्यान देते समय इनके मुख से एक शब्द अशुद्ध निकल गया। हाजरीन में से एक ने महाराज की अशुद्धि जतला दी, महाराज ने तुरन्त अपनी अशुद्धि स्वीकार कर ली, परन्तु वह बार-बार यही कहने लग पड़ा कि मैंने आपकी अशुद्धि पकड़ी। कुछ देर तो महाराज चुप रहे। आखिर महाराज ने कहा आप ने अशुद्धि पकड़ी मैंने स्वीकार कर ली।अगर मैं चाहूं तो इस अशुद्धि को भी शुद्ध सिद्ध कर सकता हूँ परन्तु मैंने जिद नहीं की पर आप बार-बार ऐसा कह कर अपने संकीर्ण हृदय का परिचय दे रहे हो। फिर वह चुप हो गया।

3. महर्षि पूर्ण विद्वान् होकर और जगद् गुरु की पदवी प्राप्त कर लेने पर भी अपने आपको गुरु न कहलवा कर वे महर्षि स्वामी विरजानन्द जी का शिष्य कहलाने में ही अपना गौरव समझते थे, अपने सब ग्रन्थों की समाप्ति पर उनके यह शब्द उनके अहंकार पर पूर्ण विजय की घोषणा करते रहेंगे।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपरमविदुषां श्री विरजानन्दसरस्वती-स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः।

शेष पेज 8 पर...

आर्यों! उठों! लक्ष्य की ओर बढ़े चलो

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, नई दिल्ली

देश धर्म की सेवा में जिसकी जीवन व्यतीत होता है वह धन्य है। समग्रक्रान्ति के अग्रदूत दयानंद ने अज्ञान, अन्याय अभाव रूपी कालिमा को दूर करने के लिये श्रुतिरूपी सूर्य के द्वारा भूमण्डल को आलोकित करने के लिए परोपकारार्थमिदं शरीरं के सिद्धांत को अपने जीवन में ढाला था।

जिस देश के लिए देव दयानंद ने विष के प्याले पीये तथा अपने आपको मिटा दिया। वहीं देश आज विधर्मियों से आक्रान्त हो रहा है। जहां कभी दूध, घी की नदियाँ बहती थी आज वहां शराब, अण्डे, मांस का बाजार गर्म हो रहा है। चारो ओर अशान्तता के बादल मंडरा रहे हैं।

आज हम ऐसे दौर से गुजर रहे हैं, जिसमें हमारी तनिक भी उदासीनता हमारे पतन का कारण बनेगी। केवल वेद की जयघोष से ही काम नहीं चलेगा आज आवश्यकता आचरण की है।

आर्यो! तर्क की तलवार चलाना सीखो।
बात जो मुंह से कहो करके दिखाना सीखो।
बहरे जजबात में तूफान उठाना सीखो।
अपनी तदबीर से तकदीर बनाना सीखो।
रहता कोई नहीं आज नसल की खूबी।
देखी जाती हैं जमाने में अमल की खूबी।

इतिहास साक्षी है, जब शाहजहां की बेटी बीमार हुई तब अनेकों वैद्य, हकीमों को बुलाकर इलाज करवाया गया, परन्तु बीमारी ठीक नहीं हुई। किसी ने कहा डॉक्टर बाटन से इलाज कराए। डॉ० बाटन अंग्रेज डॉक्टर था। संयोगवश आवंटन की दवाई से शाहजहा की बेटी ठीक हो गई। बादशाह ने कहा– मांगिये आप क्या चाहते हैं? शाहजहां का विचार था कि बाटन बीस तीस हजार रूपया मांगेगा या भूमि।

परन्तु बाटन के स्वार्थत्याग को देखिये उस व्यक्ति अपने लिये कुछ नहीं मांगा अपितु बाटन कहता है कि अंग्रेज जो यहां व्यापार करने आये हैं उन्हें तंग न किया जाये। उस समय यह बात साधारण सी लगी, परन्तु थोड़े स्वार्थत्याग के फलस्वरूप इस देश में अंग्रेजों का राज्य हो गया।

आर्यजनो! उठो! जागो!

स्वार्थ के बजाय परार्थ के लिये जीओ।

अहंकार भाव न रखूँ,
न ही किसी पर क्रोधय करूँ।
देख दूसरे की उन्नति को
कभी न ईर्ष्याभाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल सत्य व्यवहार करूँ।

आज भवन तो बन गये, परन्तु भावना नहीं बन पायी। त्यागमूर्ति की जगह राम मूर्ति की पूजा हो रही है चरित्र के स्थान पर चातुर्य का साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा है। जातिवाद, प्रान्तीयवाद, छुआछूत, भेदभाव एवं आपसी कलह के कारण

देश की अवनति हो रही है। आर्यो की इतनी शक्ति है कि ये सारे देश का नेतृत्व कर सकते हैं, परन्तु आपसी लड़ाई झगड़े के कारण आर्यों की शक्ति क्षीण हो रही है।

आज स्थिति यह है-

सूक्त संगठन के पढ़के बिखरते रहे।
पाठ शांति का पढ़ के झगड़ते रहे।
गैर को न अपना बना ही सके।
अपनों से बिछुड़ने से क्या फायदा?

ऋषि दयानंद के निर्वाण के बाद जो दीप जले, उनमें आर्यसमाज के प्रति बहुत तड़प थी। आज वह भावना नहीं अतएव आर्यसमाज अत्युन्नति के शिखर पर आरुढ़ नहीं हो रहा है। आज आर्यसमाज अपने पुण्यप्रताप से जीवित है। महर्षि दयानंद जी का त्याग व बलिदान, अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद जी का संगठन व परिश्रम, पं० लेखराम जी की लेखनी एवं कठिन तपस्या, महात्मा हंसराज जी के आदर्श, लाला लाजपतराय का व्यक्तित्व एवं दृढ़ लगन, वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी का प्रचार-प्रसार, गुरूदत्त विद्यार्थी एवं भाई परमानन्द जी के आदर्श कार्य तथा कुछ लेखको एवं कवियों की कृति व अपने पिछले गौरव से आज आर्यसमाज जीवित दीख रहा है, अन्यथा आज इसकी स्थिति शोचनीय है।

आर्यवीर राष्ट्र की मशाल, को सभाल चलो
एक दीप बुझ चुके तो, दूसरो को बार चलो
यह दयानंद की कसम, यह श्रद्धानद की कसम
वन्दनीय मात्रभूमि बोल, विश्वमातरम्

प्रिय पाठकवृन्द! आज का युग प्रचार का युग है। जिन्होंने प्रचार साधनों का उपयोग नहीं किया, वह पिछड़ गया।

जो कौम गाती नहीं, वह मिट जाती है। वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन केवल चार दीवारी तक सीमित रहता है। जरूरत हैं पार्कों में वेद का आयोजन हो। कुरान को लोगों ने अफ्रीका के जंगलों तक पहुचा दिया, परन्तु वेद को हम पूरे भारत में नहीं पहुंचा पायें।

जब कोई व्यक्ति शास्त्रार्थ करने के लिए ऋषि दयानंद के पास आता था तब ऋषि कहते थे कि मुझे केवल वेद का प्रमाण चाहिए, दूसरे किसी अन्य ग्रंथ का नहीं।

शास्त्रार्थ करने के लिए आये हुए पण्डित कहने लगे-हमने तो वेद को देखा ही नहीं। वेद को तो शंखासुर ले गया। ऋषिदयानंद उन पण्डितों को ललकारते हुए कहा- ये तुम्हारे प्रमाद के कारण है। तुम्हारे प्रमादरूपी शंखासुर का वध करके वेद लाया हूँ। आर्यवीरों आर्यराष्ट्र के निर्माण में प्राणपण से जुट, स्वयं जगें, दूसरों को जगाये।

सच को सच कहें मगर चुप न रहें।

जो भी है सूरते - हालात कहो -चुप न रहो,
रात अगर है तो उसे रात कहो, चुप न रहो,
घेर लाया है अंधेरे में हमें कौन? हफीज
आओ कहने की जो है बात कहो, चुप न रहो।

गाय की श्रेष्ठता में वैज्ञानिक कारण

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य, रोजड़, गुजरात

गाय के घी, दूध, दही आदि पदार्थों पर, आयुर्वेद के प्रमाणों सहित विवेचन हम आगे करेंगे। यहाँ पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गाय के घी-दूध आदि पर प्रकाश डालते है।

1. गाय के घी-दूध का पीलापन ही यह दर्शाता है कि इसमें सोने जैसे गुण विद्यमान हैं, और भैंस के सफेद घी-दूध में चांदी जैसे।

2. गाय के दूध में 'केरोटिन' नामक पीला पदार्थ रहता है, वह आँखों की ज्योति बढ़ाता है।

3. गाय के घी के कण सूक्ष्म तथा नरम होते हैं, अत: वे शीघ्र ही पच जाते हैं और मस्तिष्क की सूक्ष्म से सूक्ष्म नाड़ियों में पहुँच कर शक्ति प्रदान करते हैं। जबकि भैंस आदि के घी के कण मोटे तथा कठोर होते हैं। अत: आसानी से नहीं पचते। अधिकतर बिना पचे ही बाहर निकल आते हैं।

4. भैंस के दूध में 'लोंग चेन फेट' होती है जो शरीर की नसों में जम जाती है ओर भरी हुई नसें हार्ट-अटैक रोग को उत्पन्न करती हैं (डॉ. शांतिलाल शाह, अध्यक्ष, इन्टरनेशनल कार्डियोलोजी कान्फ्रेंस) इसलिए हृदय रोगियों के लिए गोदूध व घी ही उत्तम है।

5. गोघृत जलाने से निकलने वाली चार प्रकार की गैसें पहचानी जा चुकी हैं। घी जलाने से एलिटिलीन का निर्माण होता है जो अशुद्ध वायु को अपनी ओर खींचकर उसे शुद्ध करती है।

6. गोघृत से उत्पन्न गैसों में कई रोगों तथा मन के तनाव को दूर करने की अद्भुत क्षमता है। (अग्निहोत्र)

7. पोषक आहार पर पली गाय के गोबर में जैसी कीटाणुनाशक शक्ति है, वैसी अन्य में नहीं। (न्यूयॉर्क टाइम्स)

8. गाय का गोबर से लिपी-पुती वस्तुएँ एवं घर की दीवारें अणु विस्फोट के घातक विकिरणों की रोकथाम करती हैं तथा अन्तरिक्षयान में उत्पन्न होने वाली भीषण गर्मी को गाय का गोबर कम करता है। रूस के वैज्ञानिको की खोज।

9. गाय के ताजे गोबर की गन्धमात्र से बुखार एवं मलेरिया के रोगाणु नष्ट हो जाते है। (डॉ. बिगेड, इटली)

10. गाय के गोबर के सूखे चूरे का धूम्रपान कराकर दमे का रोग ठीक करने में पश्चिमी डाक्टर रुचि ले रहे हैं।

11. आस्ट्रेलिया देश में फसलों पर कीटनाशक औषधियों के स्थान पर गोमूत्र को स्प्रे मशीन से

छिड़का जाता है। इससे हानिकारक कीड़े भी मर जाते हैं और फसल को नुकसान भी नहीं होता।

12. अच्छी खाद तो गाय के गोबर, मूत्र और वृक्षों के सूखे पत्तों तथा बची-खुची सब्जियाँ मिलाकर गहरे गड्ढों में दबाकर रखने से बनती है। भारत के किसानों का खाद बनाने का तरीका यही रहा है। फैक्टरियों की खाद के प्रयोग के कारण अमेरिका की धरती खराब हो रही है। (कृषि वैज्ञानिक का लेख) (अमेरिका के दैनिक पत्र में, जनवरी 1958)

13. आज के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक गाय या बैल के एक वर्ष के मूत्र से 400 रुपयों का कैमिकल बन सकता है।

14. दुनियाँ के सभी विकसित देशों में, यथा अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान आदि में गाय के ही दूध, मक्खन पनीर आदि का प्रयोग होता है। इन देशों में दूध के लिए भैंसें नहीं रखी जाती। इसका कारण गाय के दूध में भैंस की अपेक्षा गुण अधिक होना ही है।

15. 150 वर्ष के अंग्रेजी राज्य में हजारों की संख्या में गायें तथा सांड विदेशों में ले गये किन्तु भैंस एक भी नहीं।

गाय मरी तो बचता कौन।

गाय बची तो मरता कौन।

हे ईश्वर हे जगत् पिता

हे ईश्वर हे जगत पिता हम सब तेरे गुण गाएं।
मन मन्दिर में सदा तुम्हारे नाम की जोत जलाएं।
हे ईश्वर हे जगत पिता...............

नाथ कृपा हम सब पर करना हम बालक हैं तेरे।
करो उजाला सब के मन में करके दूर अन्धेरे।
ज्ञान की आंखें हम को दे दो मन्जिल अपनी पाएं।
हे ईश्वर हे जगत पिता...............

जग के पालनहार प्रभु हम आए शरण तिहारी।
दुखियों के दुख हरने वाले सुन लो टेर हमारी।
दे दाता वरदान हमें जग में शुभ कर्म कमाएं।
हे ईश्वर हे जगत पिता...............

सत्य कथन की शक्ति दे दो झूठ कभी न बोलें।
हर प्राणी से न्याय करें और सदा बराबर तोलें।
जो हम औरों से चाहें वह खुद करके दिखलाएं।
हे ईश्वर हे जगत पिता...............

यही कामना सबके मन की भगवन् कर दो पूरी।
जन्म सफल करने की आशा रह न जाये अधूरी।
'पथिक' तुम्हारे चरणों में हम अपना शीश झुकाएं।
हे ईश्वर हे जगत पिता...............

पांच वर प्रभु के संग! आत्मविश्वास

लेखक- डॉ० देवशर्मा वेदालंकार, नई दिल्ली

प्रश्न : ईश्वर-स्तुति से आत्मविकास कैसे सम्भव है?

उत्तर- ईश्वर स्तुति से ही आत्मविश्वास बढ़ता है। ईश्वर सबसे शक्तिशाली है, रक्षक है, दाता है, प्रेरक है। आत्मविश्वास सकारात्मक ऊर्जा से भरा हुआ होता है। परमात्मा भी सकारात्मक ऊर्जा का अक्षय भण्डार है। या यों कह सकते हैं कि ऐसी ऊर्जा कहीं भी नहीं मिल सकती है। **संसार का नियम है आप जैसी ऊर्जा के पास रहेंगे वैसी ऊर्जा आपके अन्दर प्रवाहित हो जाएगी। आत्मा भी सकारात्मक ऊर्जा से भरा हुआ है परन्तु व्यक्ति को अहसास ही नहीं होता है कि उसके पास इतनी ऊर्जा है यदि वह अपने से अधिक ऊर्जा के पास जाता है तो महसूस करने लगता है कि उसके पास भी वह शक्ति है।** इसलिए ईश्वर-स्तुति आत्मविश्वास को बढ़ने में समर्थ है।

प्रश्न : ईश्वर-स्तुति कैसे करें?

उत्तर : स्तुति का अर्थ है प्रशंसा करना, गुणों का वर्णन करना। ईश्वर को तो देखा नहीं, फिर उसके गुणों का वर्णन कैसे करें? वेद मन्त्रों में ईश्वर को समझाने का प्रयास किया गया है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से भी ईश्वर को समझा जा सकता है। परन्तु सामान्य मनुष्य जिसकी समझ में यह सब नहीं आ पाता। उसकी अपेक्षा रहती है जो चीज उसके सामने रहती हैं तो उसको समझने में सरलता होती है। इसलिए यह सीख कहाँ से मिले किसके गुणों की प्रशंसा करे जिससे प्रशंसा करने का अभ्यास हो जाये। इसलिए ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना के आठ मन्त्रों का पाठ किया जाता है, जिनमें स्तुति के विषय पर बहुत प्रकाश डाला गया है। दूसरे मन्त्र **हिरण्यगर्भ** में परमात्मा को समझाने का प्रयास किया गया है। परमात्मा को हिरण्यगर्भ कहा गया है? जिसका अर्थ होता है **ऐसी शक्ति जिसने सारे ब्रह्माण्ड को अपने पेट में रखा हुआ है और सबके अन्दर भी विद्यमान है।**

प्रश्नः क्या संसार में ऐसा कोई जीव है जिसको देखकर परमात्मा के स्वरूप की जानकारी हो और उसकी स्तुति की जा सके?

उत्तरः ऐसा जीव माँ है। जिसको भगवान् ने अपने जैसा बनाया है। माँ अपने बच्चे को अपने पेट में पालती है और उसकी धड़कन को भी सुनती है। दिल दो हैं परन्तु धड़कन एक है। माँ-बच्चे जैसा निकट का सम्बन्ध दुनिया में

कोई दूसरा हो सकता है? क्या कोई प्राणी माँ [illegible] सकता है? नहीं! नहीं! नहीं! माँ के अलावा कोई प्राणी इस धरती पर नहीं है। पूरे ब्रह्माण्ड में नहीं है यदि है तो वह है परमात्मा। परमात्मा को जातवेदा कहा गया है जिसका अर्थ है वह सब उत्पन्न हुओं को जानता है। सातवें मन्त्र में कहा गया है कि वह लोक नाम, स्थान व जन्मों को भी जानता है अर्थात् जीवों की एक-एक धड़कन को सुनता है इतना निकट का सम्बन्ध है जीव और भगवान् का। आइये स्तुति करना सीखें- जैसा कि ऊपर कहा गया है कि स्तुति का अर्थ प्रशंसा करना है, तो आइये करें स्तुति किसकी? माँ को।

माँ की स्तुति से अभिप्राय है माँ के गुणों का वर्णन करना। देखने पर पता चलता है कि बच्चे कमियाँ तो बहुत निकालते हैं, पर कभी नहीं कहते माँ तूने भोजन बहुत अच्छा बनाया। तेरा धन्यवाद। तू थक गयी होगी ला मैं भी तेरी सहायता कर दूँ। तुझे खाना खिला दूँ, पानी ला दूँ तेरे पैर दबा दूँ। हाँ जब माँ से कोई काम कराना हो तो बच्चा माँ की खूब प्रशंसा करता है। बस यहाँ से हमें स्तुति करने का अभ्यास प्राप्त होने लगता है।

थोड़ा और बड़ा होता है तो विवाह हो जाता है और अब वह पत्नी वाला हो जाता है। क्या अब पति पत्नी दोनों, एक दूसरे की स्तुति कर [illegible] सकेंगे? यहाँ भी वही समस्या आ जाती है। पति पत्नी की कमियाँ निकालता है, पत्नी पति की कमियाँ निकालती है। ऐसा इसलिए होता है **क्योंकि माँ को नहीं समझा। माँ की प्रशंसा नहीं की तो पत्नी की कैसी करेगा?** सीमन्तोनयन संस्कार में पति पत्नी को पूर्णिमा कहकर पुकारता और उसकी स्तुति करता है। अर्थात् उसकी प्रशंसा करने का विधान है। यदि पति पत्नी की प्रशंसा नहीं करता है और मन्दिर भी जाता है, हवन भी करता है, तीर्थ भी जाता है फिर भी वह परमात्मा का गुनहगार बन जाता है। परमात्मा उसकी स्तुति स्वीकार नहीं करता हैं इसी प्रकार पत्नी के विषय में भी समझना चाहिए। इससे पता चलता है कि **पति पत्नी का प्यार भरा जीवन भगवान् की स्तुति ही है।**

सातवें मन्त्र में दो सम्बन्धों के विषय में और बताया गया है। **परमात्मा भाई के समान सुखदायक है।** यहाँ यह पता चलता है कि यदि भाई-भाई के लिए दुःखदायक है तो यह उसकी स्तुति नहीं हो सकती है। इसलिए भाई-भाई के लिए ऐसे काम करें जिससे उसे सुख मिले। उसके गुणों की प्रशंसा किया करे। वन में आते हुए भरत को देखकर लक्ष्मण श्रीराम से कहना चाहता है कि भरत हमें यहाँ भी चैन से नहीं

रहने देना चाहता है तभी लक्ष्मण को रोकते हुए कहते हैं भरत तो प्रशंसा योग्य है। यही स्तुति है।

इसी सम्बन्ध में **भगवान् को पिता के समान रक्षक कहा गया है।** जैसे पिता अपने बच्चों की रक्षा करता है। **अक्सर देखने में आता है बच्चे पिता की कमियाँ निकालते रहते हैं- आपने हमारे लिए क्या किया है?' सब से बड़ा काम तो यही किया कि आपको जन्म दिया, पढ़ाया लिखाया, आपके लिए घर बनाया। क्या बच्चों का कर्त्तव्य केवल कमियाँ निकालना ही हैं? कभी धन्यवाद कहना नहीं है।** इसीलिए इन मन्त्रों में हमें यही समझाने का प्रयास किया गया है। आप इन सम्बन्धों की कद्र करना सीखें। सम्मान करना सीखें। इनका सम्मान, इनकी प्रशंसा करने से आपके अन्दर जो संस्कार पैदा होंगे। वे संस्कार हो आपको परमात्मा की स्तुति करने में सहायक होंगे।

परमात्मा ने इस सृष्टि को जीवों के कल्याण के लिए ही बनाया है। यदि आप अपने व्यवहार से किसी का कल्याण कर सकते हैं तो यह परमात्मा की प्रशंसा ही होगी कमी को कमी कहकर उसको बढ़ावा न दे बल्कि गुणों की प्रशंसा करके उसको अच्छा बनाने में उसकी मदद करें।

प्रश्नः यह सब तो परिवार के लोगों की स्तुत का तरीका बताया है। परमात्मा की स्तुति का क्या तरीका है?

उत्तरः हम सब किसी न किसी परिवार के सदस्य हैं। परिवार के सम्बन्धों से परिचित हैं। हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में ये सम्बन्ध हमारे उपयोग में आते हैं। परन्तु हम इन सम्बन्धों का महत्त्व, इनकी गरिमा नहीं समझ पाते हैं। इनको नहीं मानते हैं। इसलिए हम सब सम्बन्धों को छोड़कर भगवान् की ओर चलने में जीवन का उद्देश्य मानते हैं।

हम ईश्वर के गुणों का वर्णन करना चाहते हैं और करते भी हैं परन्तु पूरे मन से नहीं कर पाते हैं क्योंकि हमें अभ्यास नहीं हैं। पारिवारिक सम्बन्धों की प्रशंसा करते-करते आपको ऐसा अभ्यास होगा कि जब आप ईश्वर स्तुति करने लगेंगे तो अपने आप भावों का झरना झरने लगेगा तो आप आनन्दित होने लगेंगे। **महर्षि दयानन्द के अनुसार- आपकी बहुत प्रकार स्तुति रूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करे और आनन्द में रहें।**

ईश्वर के गुण- हे भगवान्! आप हिरण्यगर्भ हैं, आप ही शरीर का बल व आत्मा का बल देने वाले हैं। आपका कहना मानना ही अमृत है न मानना मृत्यु जैसा दुःख प्राप्त करना है। दो पैर वाले चार पैर वाले जीवों के शरीरों की रचना आपने ही की है। लोक लोकान्तरों की

रचना आपने ही की है, और सब को नियम में चला भी रहे हो, आप ही सम्पूर्ण प्रजा के

एकमात्र स्वामी हैं कोई आपका तिरस्कार नहीं कर सकता है। आप सर्वोपरि हैं। आप ही हमें सुपथ पर लेकर चलते हैं। आप माँ, पिता और भाई की तरह है।।

प्रार्थना– प्रार्थना का अर्थ लेना है। यदि बड़ों से कुछ लेना है तो पहले उनकी स्तुति करें, फिर प्रार्थना करें। कुछ ऐसा करें जिससे देने वाले को लगे कि आप सुपात्र हैं। इसलिए पहले पूर्ण परिश्रम करें। फिर प्रार्थना करें।

प्रश्नः परमात्मा से क्या मांगें?

उत्तरः पहले ही मन्त्र में कहा गया है कि **हमारे सभी दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन दूर हों और अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव व पदार्थ प्राप्त हों,** हमें आपकी भक्ति मिले, जिस-जिस पदार्थों की हमारी कामना हो, इच्छा हो वह आपके सहयोग से पूर्ण हो, हमें धनैश्वर्य विज्ञान की राज्यादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति हो। हमें तृतीय धाम प्राप्त हो जहाँ न सुख, न दुःख केवल आनन्द ही आनन्द हो। हम सीधी-सीधी चलने वाले हों।

प्रश्नः उपासना से आपका क्या अभिप्राय है?

उत्तर : उपासना से अभिप्राय है **परमात्मा के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना है।** हमने ऊपर स्तुति को जाना जिसमें **नम्रतापूर्वक गुणों की प्रशंसा करने** की बात कही और स्तुति का फल– **'गुणों में प्रीति' है प्रशंसा करते करते जो गुण अच्छे लगते हैं उन गुणों का अपने आत्मा में धारण कर लेना ही उपासना हैं।** यह योगाभ्यास से होगा। प्रतिदिन करने से होगा। आत्मविश्वास बढ़ता चला जाएगा और इतना बढ़ेगा कि पहाड़ जैसा दुःख भी राई के बराबर लगेगा।

आचमन (अमृतपान) से आत्मविश्वास

"आत्मविश्वास एक ऐसी वस्तु है जिसको सबकी आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना कोई भी किसी भी काम को करने में समर्थ नहीं होता है। किस मनुष्य के अन्दर गुण व अवगुण नहीं हैं? गुणों के रहते आत्मविश्वास बढ़ता है और अवगुणों के रहते घटता हैं। अच्छे काम को हम सबको बताते हैं और गलत काम को छुपाते है। इसलिए आत्मविश्वास वृद्धि में आचमन एक बहुत ही उपयोगी प्रक्रिया सिद्ध होगी।"

आचमन का सम्बन्ध पवित्रता से है, शुद्धि से है। शुद्धि का अभिप्राय है शुद्ध चीजों को शुद्ध बनाए रखना और अशुद्ध वस्तु को भी शुद्ध बनाने का प्रयास करना।

प्रश्न : आचमन किसको करना चाहिए और क्यों करना चाहिए?

उत्तर : ऋषियों का मानना है कि यज्ञ एक

प्रतिदिन किया जाने वाला कर्म है। इसलिए आचमन भी नित्यकर्म का एक भाग होने से प्रतिदिन सबको करना चाहिए। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसको बहुत सारे प्रदूषित विचार घेर लेते हैं। जल्दी ही वह अपने स्वरूप को छोड़ देता है और अवगुणों में ऐसा फँसता चला जाता है कि जीवन भर नहीं निकल पाता। मनुष्य होने का अर्थ उसके लिए व्यर्थ हो जाता है। इससे भी बढ़कर एक ऐसी कमजोर भावना में फँस जाता है कि अब उसका जीवन अच्छा नहीं बन सकता परन्तु उसका ऐसा सोचना ही आत्मविश्वास को कम करना है। **आचमन से ऐसे लोग भी पुनः अच्छे बन सकते हैं।**

इस प्रक्रिया में थोड़ा सा जल दाहिने हाथ की अंजलि में लेकर पीते हैं। ऐसा तीन बार करते हैं। ऐसा करते हुए जो जल हथेली पर रखा हुआ है उसके विषय में विचार उत्पन्न होता है कि **जैसे जल को सम्भाल रहे हैं वैसे ही अपने पूर्वजों की अनोखी विरासत को भी सम्भाल लेंगे। यह आत्म-विश्वास को दृढ़ करना है।** यहाँ स्थान के महत्व को दर्शाया गया है जैसे आसमान से गिरी बूंद आग में गिरने पर जल जाती है और सीपी पर पड़ने से मोती बन जाती है। **इसी प्रकार जब पानी नल में होता है तो उसे पानी कहते हैं, आचमन के पात्र (बर्तन) में रखते हैं तो जल कहते हैं और यदि हाथ में रखते हैं तो अमृत कहलाता है।** उस अमृत को पीकर अपने आप को अमृत स्वरूप बनाने का प्रयास करता है- साथ-साथ मन्त्र का उच्चारण भी करता है- **''ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।''** और बोल उठता है कि हे भगवन्। **तू अमृत है अमृत का बिछौना है।** तूने हमें भी अमृत बनाकर ही दुनिया में भेजा था, जो शुद्ध था जिसमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं थी। **लेकिन मैं दुनिया में आकर अपने प्यारे से स्वरूप अमृत को भुलाकर मृत हो गया हूँ।** इसलिए पुनः आचमन (अमृतपान) करके अमृत बनने का प्रयास कर रहा हूँ।

दूसरा मन्त्र **''ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा।'' तू ही अमृत का ओढ़ना है, ढक्कन है तूने मुझे नीचे वे ऊपर से ढक लिया है और मैं दोनों के बीच एक सुरक्षा कवच की भांति बिल्कुल सुरक्षित हो गया हूँ।** मैं कितना भाग्य-शाली हो गया हूँ? जिसको अमृत का बिछौना और अमृत का ही ओढ़ना मिल गया हो। भक्त कह उठता है 'मैं पूर्ण रूप से सुरक्षित हूँ।' यही आत्मविश्वास है। आचमन के इन दो मन्त्रों में **'अमृत'** शब्द का प्रयोग हुआ है जो ईश्वर का स्वरूप बताता है। जिसका अर्थ है- **मृत ना होना** अर्थात् हमेशा रहना। वैदिक साहित्य में यह शब्द अनेक **ना होना** अर्थात्

हमेशा रहना। वैदिक साहित्य में यह शब्द अनेक जगह प्रयुक्त हुआ है जहाँ इसके अर्थ भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। ये अर्थ ईश्वर के स्वरूप को दृढ़ कर देते हैं। आइये। इस शब्द अमृत को समझने का प्रयास करें।

1. अमृत का अर्थ- ईश्वर की आज्ञा मानना है। मन्त्र में आता है **'यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः'** प्रभु की कृपा ही अमृत है और यह भक्त को ही प्राप्त होती है। **भक्त उसे कहते हैं जो प्रभु का कहना माने।**

प्रश्न : भगवान् भक्त से क्या कहते है? भगवान् की आज्ञा क्या है?

उत्तर : भगवान् वेद के माध्यम से स्पष्ट आज्ञा देते हैं- **मनुर्भव अर्थात् मनुष्य बन। जनया दैव्यं जनम्-दिव्य गुण वाली सन्तान को जन्म दें।** जब हम आचमन करते हैं तो हमें इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि हम मनुष्य बन रहे हैं? क्या हम दिव्य गुण वाली सन्तान को जन्म दे रहे हैं? हम इन सब बातों पर ध्यान नहीं देते हैं ओर बहुत सारे काम करते रहते हैं। मनुष्य बनना बहुत कठिन काम है। श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देना उससे भी कठिन काम है। इस विषय को विस्तार से समझने के लिए हमारे द्वारा लिखित तीन पुस्तकें अवश्य पढ़ें। काम कठिन हो या सरल हमें उसकी आज्ञा मानकर ही भक्त बन सकते हैं।

ईश्वर की आज्ञा है कि जो कुछ हमें प्राप्त हुआ है। हम उसकी रक्षा करें। ईश्वर ने हम को यह सुन्दर मानव का शरीर प्रदान किया है। हम लोग इनकी देखभाल, इनकी सुरक्षा नहीं कर पाते हैं। न योग, न व्यायाम, न खान-पान पर नियन्त्रण। न ही मस्तिष्क की सुरक्षा-जैसे धीरे बोलना, चिन्ता न करना, क्रोध न करना। आत्मा की सुरक्षा के लिए विद्या की प्राप्ति एवं तपस्या की आवश्यकता होती हैं ऐसा करना ही ईश्वर का कहना मानना है, यही अमृत प्राप्त करना भी है।

2. अमृत का प्रयोग आनन्द प्राप्त करने में भी होता है। यहाँ देवताओं ने अमृत का उपभोग किया। इसका उपभोग उन्होंने तीसरे धाम में रहकर किया। मन्त्र में कहा गया है। जहाँ विद्वान् लोग अमृत आनन्द को प्राप्त होते हैं। तीसरे धाम में स्थित हो जाते हैं। यहाँ तीन धाम हैं- एक सुख का धाम, दूसरा- दुःख का धाम और तीसरा आनन्द का धाम। कुछ लोग सुख के धाम में रहते हैं। परमात्मा की ओर से सभी सुख-सुविधाएँ प्रदान की हुई होती हैं परन्तु जब भी उनसे मिलो तो दुःख के धाम स्थित होते हैं। दूसरी ओर वे लोग होते हैं जो दुःख के धाम में स्थिति होते हैं परिस्थितियाँ उनके विपरीत होती हैं जीवन में बहुत सारे कष्ट होते हैं फिर भी **कभी दुःखों की बात नहीं करते हैं।** जब भी

उनसे मिलते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पास कोई दु:ख नहीं है। तीसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो न कभी सुखी और न कभी दु:खी होते हैं; बल्कि तीसरे धाम-**आनन्द के धाम में स्थित होते हैं।** ये लोग अपने जिम्मेदारियों का पालन करते हुए आनन्द की स्थिति में अपने आप को रखने का प्रयास करते हैं। आचमन करता हुआ भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है कि मैं अमृत को खाने-वाले देवताओं की तरह अमृत का पान करके अपने जीवन को सुख-दुख से रहित नित्य आनन्द युक्त बनाना चाहता हूँ।

3. अमृतेशय का अर्थ है अमृत में सोने वाला। ऐसे हैं विष्णु, जो क्षीर-सागर में शेषनाग पर शयन करते हैं। उनको **अमृतेशय** कहा गया है। जिसका अर्थ है अमृत पर सोने वाला। वैसे इनका नाम **विषेशय** होना चाहिए, जिसका अर्थ विष पर सोने वाला है। लेकिन नाम अमृतेशय पड़ गया। यह एक आलंकारिक वर्णन है। इसका सही अर्थ है कि **जो विषमय वातावरण में रहकर भी अमृत की प्राप्त करता है। अर्थात् अपने को विषैला नहीं होने देता और साथ-साथ अमृत में ही टिका रहता है। उसी को अमृतेशय कहा गया है।** परमात्मा का एक नाम विष्णु भी कहा गया है क्योंकि वह अमृत स्वरूप है। जीवात्मा को भी विष्णु कहा गया है। उसे भी अपना स्वरूप अमृतशेय पड़ गया। यह एक आलंकारिक वर्णन है।

4. अमृत रक्षणीय है- देव लोग अमृत की रक्षा करने वाले होते हैं वे इसको अपने से नहीं छूटने देते हैं। वे हमेशा सावधान होकर इसकी रक्षा करते हैं। सामान्य लोग आलस्यवश उसकी रक्षा नहीं कर पाते और वे मृत हो जाते हैं।

इसलिए मनुष्य को आचमन के माध्यम से समझाया गया हैं कि तुम्हें देवताओं की तरह सावधान होकर अमृत की रक्षा करनी है। इसी बात को एक मन्त्र में इस प्रकार कहा गया है- मौत के कदमों को दूर हटाते हुए चलो। मौत क क़दम अमृत को खा जाते हैं।

5. अमृत ही भोजन- परमात्मा अमृत को टपकाने वाला है। क्योंकि यह आत्मा का भोजन है। केवल अन्न को खाने वाले को परमात्मा खा जाता है। परन्तु जो परमात्मारूपी अन्न को खाते हैं अर्थात् उसका चिन्तन करते हैं, उससे शक्ति प्राप्त करते हैं, वे अमृत खाते हैं।

6. अमृत जीवनी शक्ति- भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! मैंने आपके अमृत स्वरूप को जान लिया है। मैं इसके बिना जीवित नहीं रह सक़ता हूँ। आप तो अमृत के सागर हैं थोड़ा सा मुझे भी जीने के लिए दे दो- अमृत के बिना मेरा जीवन सम्भव नहीं है। इसलिए मैं इस आचमन के माध्यम से जीवन की प्रार्थना करता हूँ।

7. अमृत बाँटने योग्य है– इस अमृत को बाँटने वाले को विप्र कहा गया– इससे पता चलता है कि यह अमृत बाँटने योग्य है। यह अमृत किसी एक व्यक्ति का नहीं है सभी का है। इसलिए जिसने इस विद्या को समझ लिया वह दूसरों को भी समझाये। विद्या बाँटने से बढ़ती है और सुरक्षित भी होती है।

इन दो आचमनों को करने से पता चलता है कि **''अमृत ही जीवन है, अमृत ही सुरक्षा कवच है, अमृत ही भोजन है, अमृत ही रक्षा के योग्य है, अमृत को बांटना चाहिए परन्तु यह अमृत तो परमात्मा है वह अमृत का सागर है।''** उसकी के निकट जाकर मांगना होगा। अब तीसरा आचमन करते हैं। यहाँ मन्त्र में **''सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्।''** प्रार्थना की गयी है कि हे प्रभो! मुझ में सत्य, कीर्ति, धन ऐश्वर्य और 'श्री' दो। मुझे इन सभी में एक शब्द बहुत प्रभावित करता है **'श्रीर्मयि' मुझ में श्री हो गया मुझे ''श्री वाला'' बना दीजिए।** यहाँ कुछ ही नाम ऐसे हैं जिनके साथ ''श्री'' अच्छी लगती है जैसे श्री राम, श्री कृष्ण, श्री लक्ष्मण, श्री भरत, श्री दयानन्द। यदि हम और नामों के साथ श्री लगाते हैं– जैसे **श्री रावण, श्री धृतराष्ट्र, श्री दुर्योधन, श्री कंस, तो आप स्वयं कह उठेंगे नहीं-नहीं इनके साथ 'श्री' अच्छी नहीं लगती है।** श्री तो बस राम और कृष्ण के साथ ही अच्छी लगती है। इन दो महापुरूषों को देखकर ऐसा लगता है। जैसे 'श्री' प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। वैसे भी जब बच्चा जन्म लेता है तो आशीर्वाद में ये वचन बोले जाते हैं– हे बालक तुम लम्बी आयु, वाणी का तेज, शरीर का तेज, और श्री प्राप्त करो। यहाँ भी **श्री** प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया जा रहा है। इसीलिए यहाँ आचमन में –**'श्री वाला'** बनाने की प्रार्थना की गयी है। श्री के साथ सत्य, यश, धन ऐश्वर्य की भी कामना की गयी है। श्री प्राप्ति में सत्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। सत्य के विषय में कहा गया है– **''सच बोलने वाले मनुष्य को मोक्ष जैसा पद भी प्राप्त हो जाता है,** दूसरी ओर **झूठ सारे दुःखों का कारण है।''** इस धरती को भी सत्य ने ही उठाया हुआ है– इसीलिए श्री प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह सत्य के साथ रहने वाला हो दूसरा शब्द **यश** है। व्यक्ति का जीवन इस प्रकार का हो, जो अपने लिए भी उपयुक्त हो और समाज के लिए भी। **कुछ व्यक्ति अपने कदमों के निशान छोड़ जाते हैं जिन पर चल कर दूसरे लोग गर्व का अनुभव करते हैं। इसी का नाम यश है।** तीसरा शब्द **'श्री'** है जिसका अर्थ सम्पत्ति है। श्री प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सम्पन्न होना चाहिए। दरिद्र और अभावों में जीवने वाला न हो। अपने पूर्ण पुरुषार्थ और समझ–बूझ से जीने वाला हो।

शेष अगले अंक में

वेद प्रार्थना

गयस्फनो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धन : सुमित्रः सोम नो भव ॥ 1/6/21/12

शब्दार्थः– गयस्फानो– ईश्वर धन सम्पत्ति को बढ़ाने वाला है, अमीवहा– वह शारीरिक, मानसिक इन्द्रिय जन्य सभी रोगों को दूर करने वाला है, वसुवित्– वह सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ है, पुष्टिवर्द्धन– शरीर, आत्मा की पुष्टि करने वाला है, सोम– हे! परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर आप हमारे, सुमित्रः परममित्र, भव बन जाओ।

भवार्थः– ईश्वर को क्यों मानना चाहिये, क्यों उसका ध्यान करना चाहिये, ऐसा प्रश्न जब बच्चों से करते हैं तो प्रायः उत्तर मिलता है कि हमें पता नहीं है। माता-पिता ने कहा अथवा लोग ईश्वर का ध्यान करते हैं इसलिए हम भी उसका ध्यान करते हैं वे स्पष्ट, सन्तोषजनक, प्रामाणिक उत्तर नहीं दे पाते हैं। जब हमें यह पता ही नहीं है कि ईश्वर से हमें क्या मिलेगा? तो फिर हम पूर्ण श्रद्धा, अटूट रूचि, महान् त्याग, घोर तपस्या और दृढ़ विश्वास के साथ ईश्वर का ध्यान कैसे कर पायेंगे। यदि कुछ होगा तो वह मात्र औपचारिकता, खानापूर्ति ही होगी।

इस मन्त्र में बताया गया है कि ईश्वर से हमें क्या मिलता है? सर्व प्रथम बताया गया कि वह गस्फानः– धन को बढ़ाने वाला है। कैसा धन? रूपया पैसा सोना आदि नहीं, जिस धन से रूपया पैसा मिलता है वह धन। वह धन कैसा है? वह धन है– बुद्धि, साहस, पराक्रम, उत्साह, श्रद्धा संयम, धैर्य, पुरूषार्थ। इस आन्तरिक गुण रूपी धन के बिना रूपया-पैसा स्वरूप धन नहीं मिलता है। रूपया-पैसा, सोना-चांदी, दुकान, गाड़ी, वस्त्र व भोजन आदि धन तो परिणाम है, वास्तविक प्रारंभिक धन तो आन्तरिक विशष्ट गुण ही हैं। इन विशिष्ट आत्मीय गुणों को प्रदान करने वाला, इनको प्रबुद्ध करने वाला, इन्हें परिष्कृत करने वाला है वह ईश्वर। इसलिए बाह्य-दृश्यमान धनों की प्राप्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। आन्तरिक गुणों की प्राप्ति हो जाने पर ये बाह्य धन तो सहज, स्वतः ही शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं।

मन्त्र में दुसरी बात बतायी गई है कि वह परमेश्वर अमीवहा– रोगों को दूर करनेवाला है, नष्ट करने वाला है, वह चिकित्सक है, वैद्य है। तो क्या ईश्वर हमें अपने रोगों को दूर करने हेतु औषधि का नाम बताता है। हाँ, न केवल औषधि का नाम बताता है अपितु यह भी बताता है कि रोग उत्पन्न ही क्यों हुआ है, रोग की उत्पत्ति के कारणों को बतलाने के साथ-साथ रोग उत्पन्न न होने पावें इसका उपाय भी बताता है। रोगों को

उत्पत्ति के मुख्य कारण है अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, असंयम, असावधानी, अव्रत आदि। रोग केवल शारीरिक ही नहीं होते हैं अपितु मानसिक भी होते हैं और इन मानसिक दोषों को भी नष्ट करनेवाला परमात्मा है।

मन्त्र में तीसरी बात बतायी गयी है कि वह ईश्वर वसुवित्-सर्वव्यापक है तथा सब कुछ को जानने वाला है। हमने अब तक होश संभालनें के बाद जितने भी अच्छे-बुरे कर्म किये हैं, वर्तमान में कर रहे हैं तथा आगे भविष्य में करेंगे उन सब को वह जान लेता है, क्योंकि वह हर जीव का अन्तर्यामी है।

अन्त में चौथी बात बतायी है कि वह पुष्टिवर्द्धनः है। पुष्टि वर्धक का तात्पर्य है कि वह गुणवत्ता को बढ़ाने वाला है जो कुछ हमारे पास है उसमें जो न्युनता है, विकृति है, अस्त-व्यस्तता है, उसे वह दूर करता है। इसे हम दूसरे शब्दों में परिपूर्णता, सुन्दरता, आकर्षण, विशिष्टता कह सकते हैं।

सभी लोगों के पास शरीर, रंग, रूप, आकार, धन, बल तो होते हैं किन्तु उनमें किसी न किसी प्रकार की कमी रहती है। वे पूर्ण नहीं होते हैं। यह अपूर्णता हमें स्वयं को खटकती है, अखरती हैं उस अपूर्णता को ईश्वर पूर्ण बनाता है। कैसे पूर्ण बनाता है? अपने विशिष्ट ज्ञान, बल आनन्द आदि गुणों को देकर।

इसलिए मन्त्र के अन्त में प्रार्थना की गयी है समस्त ऐश्वर्य प्राप्ति में सहायक बनने वाले ईश्वर! आप हमारे मित्र बन जाओ। क्योंकि मित्र ही मित्र की सहायता करता है। जब ईश्वर को हम अपना परममित्र बना लेंगे तो वह हमारी निश्चित ही हर प्रकार से सहायता करेगा। हममें ऐसा ज्ञान, शक्ति, साहस, पराक्रम भर देगा कि जिससे हम हर प्रकार की धन, सम्पत्ति को प्राप्त कर लेंगे। सभी शारीरिक, मानसिक रोगों को दूर कर लेंगे और जीवन को उत्कृष्ट बना लेंगे। आओ धार्मिक, स्वाध्यायशील सज्जनो! उस परम ऐश्वर्य देने वाले ईश्वर को अपना घनिष्ट मित्र बनायें। उससे बार-बार प्रार्थना करें कि हे प्रभो! अब तो आप अपनी कृपा से हमारे मित्र बन जाओ, बने रहो।

'आर्य' हमारा नाम है, 'वेद' हमारा धर्म,
'ओ३म्' हमारा देव है,
'सत्य' हमारा कर्म।
सत्य-असत्य के निर्णय के लिए
'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ें।
हमारा अभिवादन- **'नमस्ते'**।

॥ ओ३म् ॥

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,

श्रीमुनीश्वरानन्द भवन, नया टोला, पटना- 4

के तत्वाधान में

दिनांक 8.9.10 एवं 11 अक्टूबर 2014 को

विद्युत बोर्ड कॉलोनी मैदान, शास्त्री नगर, पटना

में

आर्य महासम्मेलन 2014, पटना

का

विशाल आयोजन

बिहार के आर्य विद्वानों उपदेशको, भजनोपदेशकों, सन्यासियों, आर्य वीरों, वीरांगनाओं एवं कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध है कि तन, मन, धन से सहयोग करें और सम्मेलन में भाग लेकर पुण्य के भागी बनें।

गंगा प्रसाद	सत्यदेव प्रसाद गुप्ता	रमेन्द्र कुमार गुप्ता
प्रधान	कोषाध्यक्ष	मंत्री

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना

विदुषियों को सौप दें। विद्वानों को भी समस्त शास्त्रों के विचारों के सार से विद्यार्थियों को शास्त्रों से युक्त करना चाहिये। जिससे कि वे शरीर और आत्मा के बल को और विज्ञान को प्राप्त कर सके। साथ ही विद्या की इच्छा रखने वाले ब्रह्मचारियों का कर्तव्य है कि वह विद्वानों के पास जा कर अनेक प्रकार के प्रश्न करके और उनके उत्तर पाकर विद्या बढ़ावे। जो विद्या को चाहे वे सबके मर्म-भेदी शब्दों को सहन करे। जो विद्यार्थी निष्कपट भाव से विद्वानों की सेवा करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त करते हैं। जो जिससे विद्या प्राप्त करते हैं, वह उसे पहले अभिवादन करे और उचित प्रकार से उसकी सेवा करें। कभी भी किसी भी परिस्थिति में आचार्य का अपमान नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार गुरू और शिष्य एक दूसरे का सम्पोषक है। दोनों मिलकर ही अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि कर सकता है। वेद भी दोनों की रक्षा और सुरक्षा का आदेश करते हुए कहा है- ''आ भरतं शिक्षतं बज्रवाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसत्।।

ऋग्वेद 1.109.7

हे मनुष्यों जो सुशिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाशक और माता-पिता के समान कृपा पूर्वक रक्षा करने वाला अध्यापक/उपदेशक है तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित वृद्धि वाला विद्यार्थी है, उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस कर्म के बिना विद्या की उन्नति कभी सम्भव नहीं।

पं० संजय सत्यार्थी
सह-संपादक

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में, मुद्रित सामग्री
श्री/मेसर्स........
मो0........
पो0........
जिला........

सम्पादक जी
आर्य संदेश दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड , नई दिल्ली-1

(प्रेषिति के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।